ओ३म्

जिज्ञासु—उपहरण-माला । प्रथम उपहार-मणि ।

आर्य्यपथिक

लेखराम

मुन्शीराम जिज्ञासु

द्वारा

सम्पादित

—:०:—

सं० १९५८ वि० दयानन्दाब्द, २१ सं० १९०१ ई०
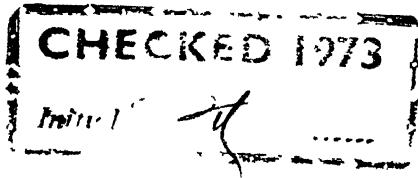
प्रथमावृत्ति २०००प्रति । मूल्य प्रति पुस्तक, एक रुपया ।

गुरुकुल यन्त्रालय काङ्गड़ी में श्री लाला नन्दलाल द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित ।

ओ३म्

प्रस्तावना ।

इस ग्रंथ का नाम आख्यायिका मैं रख नहीं सक्ता और नाहीं अपने में ग्रंथ-कर्त्ता बनने की योग्यता समझता हूं । आगे के पृष्टों में पाठकों के लिए भाषा के लालित्य तथा विचारों के पांडित्य को खोजना एक निष्फल परिश्रम होगा । मैं शुष्क, ऐतिहासिक होने का भी अभिमान नहीं कर सक्ता, क्योंकि जिस जीवन के साथ मेरा ज्वलन्त सम्बन्ध रह चुका है, और जो घटनाएं, स्मरण करने पर, अब भी जागृत अवस्था में मेरे सामने ज्यों की त्यों खड़ी हो जाती हैं उनका वर्णन करते हुए तीव्र से तीव्र तर्क भी परास्त हो जाता है ।

इस लिए इस पुस्तक को एक पवित्र जीवन के चरणों में कृतज्ञता की भेंट-मात्र समझिए ।

उपरोक्त कृतज्ञता का ऋण चुकाने में इतना विलंब हो गया था कि मुझे इस पुस्तक को बहुत ही अल्प समय में समाप्त करना [illegible] । इस कारण न केवल यही कि बहुत से प्रूफ़ स्वयम् नहीं देख सका (जिस से छापे की अशुद्धियां रह गईं) प्रत्युत बहुत सी एक ही प्रकार की घटनाओं में से यह निश्चय करने का कार्य भी कठिन होगया कि किन को स्थान दिया जाय और किन को किसी आने वाले समय के लिए

रख छोड़ा जाय। मैं इन विविध त्रुटियों के लिए केवल यही आशा कर सकता हूं कि धर्मवीर लेखराम के जीवन से जो शिक्षा मिलती है, उस का उज्वल प्रकाश इन त्रुटियों की ओर कोई दृष्टि ही न जाने देगा। यदि इस ग्रंथ की द्वितीयावृत्ति की आवश्यकता हुई तो इन तथा अन्य त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करूंगा।

अन्त में मैं आर्य-पथिक के चचा श्री गंडाराम जी, उनके पुराने उस्ताद मुंशी तुलसीदास जी, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधिकारी गण तथा अन्यान्य आर्य-भाइयों को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने पंडित लेखराम के जीवन संबंधी पत्र व्यवहार तथा अन्य लेख मेरे हवाले करने में तनिक भी संकोच नहीं किया।

मुन्शीराम जिज्ञासु

गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी,
९ मार्गशीर्ष, १९७१ वि०

* ओ३म् *

आर्य्य पथिक लेखराम

का

जीवन वृत्तान्त ।

आर्य्यसमाज के परिमित चक्र में तो कोई ही ऐसा बेपरवा आलसी होगा जो आर्य्य पथिक के नाम तथा काम से परिचित न हो, किन्तु आर्य्यसमाज से बाहिर भी करोड़ों मनुष्यों ने लेखराम का नाम सुना है। वीर लेखराम के जीवन की अन्तिम घटना यदि ऐसी क्षुब्ध न होती तो सम्भव था कि उन की अर्थी के साथ ३० सहस्र के स्थान में तीन सहस्र जन संख्या भी न होती, ऐसी अवस्था में सम्भव है कि आर्य्य समाज की परिधि से वाहर उस को जानने वाले भी कम होते; किन्तु फिर भी उस के जीवन में ऐसी विचित्र घटनाओं का प्रादुर्भाव हुआ है जिन से उस का जीवन वृत्तान्त सर्व साधारण के लाभार्थ प्रकाशित करने की आवश्यकता होती।

जन्मस्थान ।

जन्मभूमि को जननी कहना कुछ अनुचित नहीं क्योंकि जिस प्रकार गर्भ में स्थित सन्तान पर माता के गुण,कर्म तथा स्वभाव के संस्कार पड़ते हैं वैसे ही जन्म-भूमि के जल, वायु तथा प्राकृतिक दृश्यों का भी आश्चर्य्य जनक प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है। लेखराम का जन्म एक ऐसे स्थान में हुवा जहां का जल वायु पुष्टिकारक तथा जहां के बाह्य दृश्य मन को उत्साहित करने वाले थे। पंजाब में झेलम का ज़िला जानदार घोड़ियां उत्पन्न करने वाले धन्नी प्रान्त की वर्ली हद्द पर स्थित है, उस में चकवाल की तहसील प्रसिद्ध है। ख़ास चकवाल उप नगर से आठ कोस पूर्व की ओर ऊंची सतह पर सैदपुर (सय्यदपुर) नामी एक ग्राम है। इस ग्राम के तीनों ओर कस अर्थात् बरसाती नदियां बहती हैं। ग्राम की पूर्वी सीमा वाली नदी का नाम काशी है। इस नदी का श्रोत रामहलावां नामी पहाड़ी से आरम्भ होता है, जिस के विषय में प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि वनवास के समय पाण्डव कुछ काल तक इस स्थान में खेती कर के दिन विताते रहे। रामहलावां पहाड़ी हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ कटाक्षराज के पास ही हैं, इसी कारण नदी का नाम काशी पड़ा होगा। दूसरी नदी का नाम सुर है जिसे पण्डित लेखराम जी 'सरस्वती' का अपभ्रंश बत-

लाया करते थे। इस नदी का श्रोत "करङ्गली" नामी पहाड़ी से निकलता है और सय्यपुर के दो ओर होता हुवा काशी से जा मिलता है। दक्षिण और पूरब के कोने की ओर बराबर एक हरी भरी गिरमाला जाती है जिसका नाम "दरेगश" और "दल जब्बा" है। इस ग्राम की आबादी ३०० घरों से अधिक न थी, किन्तु ग्राम निवासी प्रायः खाते पीते खुशहाल थे। सिक्खों के राज्य में इस ग्राम की ऊंचाई पर एक पहाड़ी गढ़ भी था, जिसे सर्दार उत्तमसिंह आहलूवालिया ने बनवाया था। उस गढ़ के एक दो बुर्जों के अब चिन्ह मात्र ही शेष रह गए हैं, बाकी सब कुछ बरसाती नदीयों की भेंट हो चुका है।

वंशावलि।

यद्यपि पण्डित लेखराम का जन्म सय्यदपुर में हुवा तथापि उन का वंश पहिले पोठोवार का निवासी था। रावलपिंडी का ज़िला पोठोवार का गढ़ है, उस के कहूटा नामी ग्राम में लेखराम के पुरुषा निवास करते थे। कहूटा भी प्राकृतिक दृश्यों से शून्य स्थान नहीं है किन्तु उस का वर्णन इस समय करने की आवश्यक्ता नहीं। यहां इतना लिखना ही पर्य्याप्त है

कि लेखराम के दादा महता नारायणसिंह के पिता पहिले पहिल पोठोवार से अपने ससुराल के ग्राम सैय्यदपुर में आ बसे थे। उन के दो पुत्र थे जिन में एक नारायणसिंह थे। नारायणहिं के दो पुत्र उत्पन्न हुवे; बड़े का नाम महता तारासिंह और छोटे का नाम महता गण्डाराम जो पेशावर पुलिस में डेपुटी इन्सपेक्टर थे और अब पेन्शन लेकर रावलपिन्डी में निवास करते हैं। बड़े महता तारासिंह के घर तीन पुत्र तथा एक पुत्री उत्पन्न हुए। सब से बड़े का नाम लेखराम, दूसरे का तोताराम और तीसरे का बालकराम रक्खा गया। पुत्री सब से छोटी थी जिस का नाम मायावन्ती रक्खा गया था। लेखराग वर्तमान जाति भेद के विचार से ब्राह्मण थे इतना लिखना ही काफ़ी था; इस से अधिक आन्दोलन की इस समय, जब कि वैदिक वर्ण व्यवस्था के पुनर्जीवित करने का विचार हो रहा है कुछ भी आवश्यकता नहीं, फिर भी इस विषय का विशेष वृत्त मनोरञ्जक ही होगा।

पैत्रिक संस्कारों का प्रभाव।

लेखराम के प्रपितामह का नाम "प्रधान" था। यह शाण्डिल्य गोत्रज सारस्वत ब्राह्मण कुल में से एक साधारण पु-

रुप थे । इन के विषय में कुछ विशेष हाल मालूम नहीं हुवे परन्तु आर्य्य पथिक के दादा नारायणसिंह के जीवन पर एक दृष्टि अवश्य डालने की आवश्यकता है, क्योंकि लेखराम के जीवन में बहुत सी घटनाएं ऐसी उपस्थित हुई हैं जिन का गुह्यरहस्य पैत्रिक संस्कारों के ज्ञान बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता । नारायण के साथ सिंह का योग ही सिद्ध करता है कि परशुराम की तरह यह भी हर समय कहने को तय्यार रहते थे कि—"केवल द्विज कर जानेस मं हीं । मैं जस विप्र सुनाऊं तोहीं ।" हम ऊपर लिख चुके हैं कि सय्यदपुर में सर्दार उत्तमसिंह ने सब से पहिले गढ़ बनाया था । उन के पश्चात् यहां के हाकिम सर्दार कान्हसिंह मजीठिया हुवे, जिन के यहां नारायणसिंह ने घोड़ चढ़ों (सवारों) में नौकरी कर ली । नारायणसिंह बड़े दृढ़ पुरुष थे । उन का शरीर बलिष्ट तथा हाथ पैर खुले थे । उनकी बाहादुरी के कारण सर्दार कान्हसिंह इन्हें बहुत माननीय समझते थे और प्रायः भोजन अपने साथ ही कराया करते थे । पेशावर में एक बार सर्दार कान्हसिंह के साथ पठानों के सामने युद्ध में खड़े हुवे थे जहां इन को बड़ा प्रबल घाव लगा । बन्दूक की गोली मुंह में लगकर दहने कान के पास होती हुई गर्दन में से बाहिर निकल गई, किंतु बहादुर नारायणसिंह ने मुख पर मलिनता तक को आने न दिया । जब निरोग हुवे तो सर्दार साहेब ने सोने के कड़ों की जोड़ी

देकर उनका मान किया। इस के पश्चत् भी कई लड़ाइयों में हाथ दिखा कर इन्होंने सिक्खों की नौकरी छोड़दी। इन के जीवन की एक और विचित्र घटना यह वर्णन के योग्य है कि जब बृटिश राजशासन के स्थापन होने पर प्रजा से हथियार लेलिये गए तो नारायणसिंह ने अपने हाथसे हथियार रखने को अपमान समझा और "पुंच्छ" के राज्य में जाकर अपने हथियारों को स्वयम् बेच दिया। हम आगे चलकर. लेखराम के जीवन में अपने पितामह के दृढ़ सङ्कल्पों का प्रभाव देखेंगे। अपने बड़े पुत्र तारा सिंह के विवाह के पश्चात्, जो सम्वत् १६१२ में हुआ, नाराणसिंह कश्मीर के सर्दारहाड़ासिंह जी के यहां कोठारी नियत होकर चले गए और वहां से लौटकर उन का देहान्त सम्वत् १६२५ में सय्यदपुर ग्राम के अन्दर हुआ।

नारायणसिंह के छोटे भाई श्यामसिंह थे। यह बाल ब्रह्मचारी ही रहे और सिक्खों के राज्य की समाप्ति पर साधु होकर विचरते रहे। इन का देहान्त सम्वत् १६२८ विक्रमी में हुवा जबलेखराम कुमारावस्था से आगे पगधरने लगे थे और यदि हम यह अनुमान करें, कि लेखराम के आगामी धार्मीक जीवन पर इन के दृष्टान्त का कुछ प्रभाव पड़ा तो कुछ अनुचित न होगा।

जन्म तथा बाल्यावस्था ।

लेखराम का जन्म ८ चैत्र सं० १६१५ वि० को शुक्र के दिन सइय्यदपुर ग्राम में हुवा । छः वर्षकी आयु में ही इनको देहाती मदरसे में उर्दू फ़ारसी पढ़ने के लिये भेजा गया । पञ्जाब में चिरकाल से फ़ारसी का राज्य हो चुका था । खालसा पन्थ के राजशासन से पहिले लाहौर मुसलमान राजप्रतिनिधियों का गढ़ था । कई समयों में दिल्ली के बादशाह स्वयम् लाहौर में निवास किया करते थे । न्यायालयों का सर्व काम हिंदू राजकर्म्मचारी भी फ़ारसी में ही किया करते थे । देवनागरी अक्षरोंका किञ्चिन्मात्रभी प्रचार न था, और होता कैसे जब सरकारी नौकरी से बढ़ कर कोई मान्य का स्थान न समझा जाता था और सरकारी नौकरी में उन्नति प्राप्तकरने के लिये आवश्यक था कि फ़ारसी भाषा में उत्तम योग्यता सम्पादन की जावे । उन दिनों ५) मासिक पाने वाला घाट का मुहर्रिर भी अपने आप को "अहले क़लम" कह कर उपजकी लेता था और लाखोंपति साहूकारों तथा सैकड़ों की मालगुज़ारी भुक्ताने वाले ज़मींदारों को अपनी प्रजा समझता था । ऐसे समय में एक ब्राह्मण कुलोत्पन्न बालक के लिये भी देवनागरी लिपि सिखाने और संस्कृत भाषा पढ़ाने का विचार किस के दिल में उत्पन्न हो सकता था ? किन्तु फिर भी मालूम होता है कि

लेखराम के हृदय में अपने धर्म्म के दृढ़ संस्कार छुटपन से ही स्थिर हो चुके थे। अपने धर्मकी कथाएं उन्हों ने कहां से सुनीं और उन पर दृढ़ता कैसे हुई, इस का कुछ पता नहीं चलता; किन्तु यह स्पष्ट है कि लेखराम के चित्त पर धार्म्मिक घटनाओं का प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ा करता था।

अभी अक्षराभ्यास ही हुवा था कि शिक्षाविभाग का चीफ़ मुहर्रिर परीक्षा लेने को आया और लेखराम की हाज़िर जवाबी से ऐसा प्रसन्न हुवा कि उसे विशेष पारितोषिक का पात्र समझा। सं० १९२६ में, जब लेखराम की आयु ११ वर्ष की थी, उस के चचा गण्डाराम पेशावर पुलिस में एक स्थिर स्थान पर नियत होगये और उन्होंने लेखराम को अपने पास बुला लिया। इस स्थान में लेखराम को कई अध्यापकों के पास पढ़ने के लिये जाना पड़ा। अध्यापक यतः मुसलमान होते थे इस लिए मुसलमानी मत के संस्कार लड़के के दिल पर बैठाने का प्रयत्न करते थे परन्तु लेखराम की शङ्काओं से इतने तङ्ग आजाते थे कि पढ़ाने से जवाब दे कर चल देते। फिर लेखराम के चचा पेशावर से बाहिर के थानों में बदल गये; लेखराम भी उन के साथ गया। इस समय की एक घटना लेखराम के भविष्यत जीवन का परिचय देती है। अपनी चची को एकादशी का व्रत बड़ी श्रद्धा से रखते देख कर आपने भी उपवास करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। चची ने यह कह कर समझाया कि बच्चे भूख को सहन नहीं कर

सकते,हठ को छोड़ देना चाहिये । दृढ़ संकल्प लेखराम ने एक न मानी और नियम पूर्वक एकादशी के दिन उपवास करना आरम्भ कर दिया । जिन के पैतृक संस्कार ऐसे दृढ़ हों, उन को उत्तम शिक्षा किस उच्च अवस्था पर पहुंचा सकती है इस के सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

शिक्षा का प्रभाव ।

इस समय जब मनुष्य-शिक्षा सम्बन्धी आन्दोलन में दिनों दिन उन्नति हो रही है और जब कि शताब्दियों के पक्ष-पात छिन्न भिन्न कर के युरोपियन शिक्षक आर्य्यों की प्राचीन विद्या से उपदेश ग्रहण करने में भी अपनी कुछ हतक नहीं समझते, यह कल्पना करना कठिन है कि आज से ३४ वर्ष पहिले पंजाब देश में सारी शिक्षा की समाप्ति कुछ फ़ारसी के लिखे हुवे पत्रों के साथ ही हो जाती थी । लेखराम को शारीरिक शिक्षा, वर्त्तमान सरकारी शिक्षा विभाग के कृत्रम नियमानुसार, कुछ मिली वा नहीं इस का पता लगाना कठिन है; किन्तु उनका चौड़ा माथा, उनका खुला विशाल सीना,

उनकी सिंह ठवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण थी कि ईश्वरीय नियमों की गोद में पले हुवे बच्चों की शारीरिक अवस्था वैसी ही स्वाभाविक होती है जैसे कि ईश्वर के ज्ञान,बल और क्रिया स्वाभाविक हैं। लेखराम को मानसिक शिक्षा क्या मिली ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए बड़े आन्दोलन की आवश्यक्ता नहीं। अपने चचा महाशय गण्डाराम जी के पास यह चौदह वर्ष की आयु तक रहे, उस के पश्चात् सयदपुर चले गए और वहां के देहाती मदर्से में शिक्षा लाभ करने लगे। इस देहाती मदर्से के मुख्याध्यापक मुंशी तुलसीदास थे। लेखराम ने जो कुछ भी किताबी तालीम हासिल की वह इन्हीं की बदौलत थी। मुंशी तुलसीदास पुराने ढर्रे के स्वतन्त्र विचार वाले आदमी थे। इन का स्वभाव मस्त फ़क़ीरों का सा था, किन्तु साथ ही हृदय बड़ा ही पसीजने वाला और दूसरों के दुःख को अनुभव करने वाला था। मुंशी तुलसीदास आदमी को पहिचानने की शक्ति रखते थे। कवि ने सच कहा है:—

"आदमी आदमी अन्तर, कोई हीरा कोई कङ्कर"—किन्तु यह पता लगाना, कि हीरा कौन है और कङ्कर कौन, साधारण पुरुषों का काम नहीं।

किसी पुरुष विशेष की मानसिक उन्नति का पता लगाने के लिए उस की लड़कपन की अवस्था के निरीक्षण करने

वालों की सम्मति बहुत सहायता देती है । जहां लेखराम के प्रथम चौदह वर्ष के जीवन का ठीक वृत्तान्त उन के चचा महाशय गण्डाराम के लेखों से मिलता है, वहां उस के पश्चात् उन के शिक्षण सम्बन्धी जीवन तथा उन के मानसिक विकाश का पता मुंशी तुलसीदास चकवाल निवासी उभ्रा खत्री वंशीय के लेखों से पता लगता है । मुंशी तुलसीदास का महाशय गण्डाराम के साथ बराबर पत्र व्यवहार था । उन के पत्रों से लेखराम के विस्तृत होते हुवे गुण, कर्म्म, स्वभाव का ठीक पता लगता है । किन्तु उन पत्रों में से लेखराम के जीवन सम्बन्धी लेखों को उद्धृत करने से पहिले मैं उन का उस समय का लेख इस स्थान में नक़ल करता हूं जो लेखराम के महान आत्मसमर्पण का समाचार सुन कर उन्होंने मुद्रणार्थ भेजा था । वह लिखते हैं:—

"स्वर्गवासी पण्डित जी अपने दोनों छोटे भाइयों (तोता-राम और बालकराम) सहित मेरे पास तालीम पाते रहे । धर्म्म पर शहीद होने वाले पण्डित जी का क़द (आकार) दर्मियाना, सांवला रङ्ग, कुशादा (खुली) पेशानी, सियाह चश्म (पीछे एक आंख में कुछ विकार सा बैठ गया था) हँस मुख थे । उस समय उनकी आयु १४ वा १५ वर्ष की होगी । बड़े सरल हृदय थे । कुरते की घुण्डी खुली है तो वैसी ही रही, पगड़ी का लड़ गले में है तो कुछ परवा नहीं; किन्तु स्वभाव ऐसा

तीक्ष्ण और स्मरण शक्ति ऐसी पहुंचने वाली कि कठिन से क-ठिन फ़ारसी के पाठ को दोबारा उन्होंने कभी नहीं कहा था। जो पूछो नोक ज़बान होता था। हिसाब में यकता, क़सस-ए-हिन्द (भारत का इतिहास) उपस्थित इत्यादि। केवल गुलिस्तां पूरे आठबाब और बोस्तान पूरे दसबाब नियम पूर्वक पण्डित साहिब ने मुझ से बातर्कीब पढ़े। फिर बहारदानिश आधी से अधिक कुछ सिकन्दरनामा और मुन्तख़बात-ए-फ़ारसी, जिस में अनवार सुहेली, सिकन्दरनामा, शाहनामा का कुछ इन्तख़ाब था। मगर इन किताबों की शिक्षा में यह हाल था कि दो दो पत्रे उलटने पर शायद ही कभी कोई शब्द मुझ से पूछा हो, खुद ही उन की सैर में किश्ती बर आब की तरह तैरते जाते थे" मुन्शी तुलसी दास जी के पत्र व्यवहार से कुछ लेख तिथिवार उद्धृत करना इस स्थान में बड़ा उपयोगी होगा—"चिरञ्जीव लेखराम जी रात के दस बजे तक मेरी कुटिया में रहता है। बहार दानिश में नज़र सानी (पुनरावृत्ति) करता है। इस मदर्से में अपना सानी (बराबरी का) नहीं रखता। बर्खुरदार है" १६ फ़रवरी, सं० १८७३ ई०—"लेखराम मानीटर हो गया"।

१० अगस्त सं० १८७३ ई० "मुन्शी लेखराम मानीटर साहेब काम का तो नाम भी नहीं लेते, पढ़ाई का क्या ज़िक्र। अपनी जहलत के शग़ल (कविता से मतलब है) से फ़रसत

नहीं पाते। ख़ैर अब पहिले की निसबत कुछ सुधार पर आ गए हैं"।

८ दिसम्बर १८७३ ई० । "मुन्शी साहेब लेखराम अब तक अपनी जिहालत पर कमर बस्ता हैं। और तो सब कुछ रखते हैं मगर अक़ल (बुद्धि)। हाय अफ़सोस ! अगर यह भी होता तो अन्दर बाहर आदमी होते"।

लेखराम के सम्बन्धी फ़क़ीरचन्द भी मुन्शीतुलसीदास के पास ही पढ़ते थे। उन की योग्यता की प्रशंसा करते हुवे १८ फरवरी सन् १८७४ को उक्त मुन्शीजी ने लिखा था—"लेखराम साहेब भी लेख तथा वक्तृत्वशक्ति में उन से कम नहीं किन्तु तनिक बुद्धि की कसर है।" यह बार बार बुद्धि की कसर का ज़िक्र क्यों आता है और इस से अध्यापक का क्या मतलब है ? आगे चल कर कुछ स्पष्ट हो जाता है।

२४ अगस्त स० १८७४—"लेखराम की प्रकृति के बदलने की ओर हार्दिक ध्यान दीजिएगा। विद्या से विनय उत्तम है और अक़ल शकल से......" लेखराम की प्रकृति में दास भाव पहिले से ही न था, स्वतन्त्रता कूट कूट कर बाल बाल में भरी हुई थी। यही कारण था कि कई बार छात्रवृत्ति तथा पारितोषिक पाने पर भी वह कभी कभी सरकारी शिक्षा

विभाग के बड़े कर्म्मचारियों को भी अप्रसन्न कर लिया करते थे।

इस समय के पहिले से ही लेखराम को कुछ तुकबंदी का भी शौक़ हो चला था औरफ़ारसी तथा उर्दू के अतिरिक्त आप पंजाबी में भी तबियत लड़ाया करते थे। यद्यपि एक महाशय के लेख से ज्ञात होता है कि रिवाजी शृङ्गाररस की कविता की ओर भी लेखराम के दिल का झुकाव था परन्तु मुझे उन की उस समय कीलिखी हुई एक ही कविता मिली है, जिस का सदाचार के साथ सम्बन्ध है। आप ने पंजाबी बैतु-लबाज़ी हुक़्के के विरुद्ध की है जो कवि के बल तथा निर्बलता दोनों का प्रकाश करती है।

"वे वाङ्ग हुके नहीं चीज़ भैड़ी लख बदियां दाइबतदाऽहुक़ा। खङ्ग गर्मी ते सौदाऽसाह चारों रोग करे वरपाऽहुक़ा। जूट्ठा चक्खना चंङ्गयां मन्दयां दा कोइ फ़ायदा चादसालाऽहुक़ा। शूम बूम वाङ्गुए चिलमकश जित्थे बैठ करे ताज़ा जिस जाऽहुक़ा। गहर वाङ्ग स्याही स्याह करे स्याही यही मुंहदे उत्ते मलाऽहुक़ा। बूबदतर है वाङ्ग बौल थी भी बोल वोलछड्डे सीना खा हुक़ा। नेकमाश नू हुक़ा बदनाम करदा वाबने कदे बुरा कमाऽ हुक़ा। एह ऐब मैं नेदिते गिन सारे कोई फ़ाइदा नहीं बस बसाय हुक़ा। लेखराम बस बैठ के नाम जपलो नड़ी भन्न के देओ उड़ाय हुक़ा।"

शिक्षा समाप्ति तथा पुलिस की नौकरी ।

लेखराम के परिवार में चिरकाल से उच्च शिक्षा प्राप्त करने की प्रणाली प्रचलित न थी। इन के दादा तो सर्वथा अशिक्षित ही थे, हां इन के चचा गण्डारामजी ने कुछ फ़ारसी उर्दू में अभ्यास किया था जिस के अनुकरण में उन्हों ने भी इन्हीं भाषाओं का अच्छा अभ्यास कर लिया। किन्तु समय के प्रचलित विचारों के अनुसार सत्रह (१७) वर्ष की आयु वाले युवक का कर्तव्य था कि वह कमाई कर के माता पिता को आर्थिक सहयता देवे, इस लिए इस आयु से पहिले ही इन को सरकारी नौकरी दिलाने की फ़िक्र हो रही थी। उस समय "निकृष्ट चाकरी" को ही अत्युत्तम तथा मान स्थानी समझा जाता था "उत्तम खेती" को गिरा हुवा किसानी काम कहा जाता था; तभी तो महाशय गण्डारामजी, उस समय जब कि लेखराम की आयु पूरे १६ वर्षों की भी न हुई थी, अपने भतीजे के गुरु को प्रेरित करते हैं कि वह इन्सपेक्टर मदारिस के पास लेखराम की नौकरी के लिए सिफ़ारिश करे जिस के उत्तर में मुन्शीतुलसीदास लिखते हैं "अगर साहेब इन्सपेक्टर बहादुर तशरीफ़ लाए और इमतिहान भी अच्छा हुवा, तो मैं ज़रूर लेखराम की निसबत ज़बानी अर्ज़ करूंगा। आइन्दा उस

की क़िस्मत के तअल्लुक़ है।" सत्रहवां वर्ष अभी समाप्त नहीं हुवा था कि लेखराम को चचा ने पेशावर पुलिस में भरती करा दिया। उस समय क्रुस्टी साहेब वहां की ज़िला पुलिस के सुपरेन्टेन्डेन्ट थे। कैसी विचित्र घटना है कि जिन क्रुस्टी साहेब ने लेखराम को पुलिस में भरती किया था, लेखराम के मारे जाने पर उन्हीं से मुझे घातक का पता लगाने के लिए विशेष प्रार्थना करनी पड़ी। क्रुस्टी साहेब ने मुझे बतलाया था कि जहां उन्हें मालूम था कि लेखराम अपनी निर्भयता तथा स्पष्ट वक्तृत्व के कारण कभी न कभी मारा जायगा, वहां उस कीदृढ़ता के लिए उन के हृदय में सदा मान का भाव रहा करता था।

सम्वत् १९३२ के पौष मास में २१ दिसम्बर सं० १८७५ ई० के दिन, लेखराम पेशावर पुलिस में भरती किए गए। पुलिस की नौकरी का वृत्तान्त न तो मनोरञ्जक और न हो शिक्षादायक हो सक्ता है। अढ़ाई साल पिछे १) मासिक की उन्नति और फिर प्रत्येक वर्ष के पीछे सारजन्टी के एक एक दर्जे की उपलब्धि का विस्तार पूर्वक वृत्तान्त भी हमारे पल्ले कुछ नहीं डाल सक्ता। सम्वत् १९३७ तक बराबर वेतनोन्नति होती रही, किन्तु उस सम्वत् की समाप्ति के लग भग लेखराम के आत्मा में कुछ विचित्र परिवर्तन होने लगा। पुलिस में नौकर होने से पहिले ही, जब लेखराम अपने चचा के पास "सुआवी" में थे, एक धार्म्मिक सिक्ख सिपाही के सत संग से उन्हें पर-

मात्मा की उपासना का अभ्यास हो गया था। प्रातःकाल ब्राह्ममहूर्त में ही स्नान कर के समाधि लगा कर बैठ जाते और दिन को गुरमुखी अक्षरों में लिखी हुई गीता का पाठ करते। महाशय गण्डाराम जी लिखते हैं कि एक रात्रि को खटिया पर समाधि लगाए बैठे थे कि सब के देखते देखते खटिया से नीचे आ रहे। शिर नीचे और पांव खटिया के ऊपर हो गए, किन्तु इस अवस्था में भी वह अपने ध्यान में मस्त थे।

लेखराम के इस आरम्भिक ईश्वर प्रेम की अवस्था पर पुलिस की नौकरी भी अपना कुछ असर न डाल सकी। सम्वत् १९३७ में फिर से वैराग्य की लहर उठी जिसने पुलिस की हकूमत और सांसारिक ऐश्वर्य्य का नशा हिरन कर दिया। इस समय लेखराम के विचार सर्वथा नवीन वेदान्तियों के साथ मिलते थे। अद्वैत में निश्चय रखते हुवे भी इन्होंने उपासना को जवाब नहीं दिया था और इसी लिये आज कल के वेदान्तियों की तरह वह अद्वैत मत को सांसारिक विषयों के भोग का साधन बनाने का प्रयत्न नहीं करते थे। गीता पढ़ने का परिणाम यह हुवा कि कृष्ण भक्ति में अधिक श्रद्धा हो गई, और रासलीला देखने की ओर रुची बढ़ी। टीके लगा कर "कृष्ण कृष्ण" का जप करते रहते। कृष्ण भक्ति में प्रेम इतना बढ़ा कि नौकरी छोड़ कर वृन्दावन निवास के लिये जाने को तय्यार हो गए। इस समय लेखराम की आयु २१

वर्ष की थी। माता ने विवाह की तय्यारी करदी परन्तु उस वैराग से प्रेरित हरिभक्त ने विवाह से सर्वथा इनकार कर दिया। महाशय गण्डाराम जी इस विषय पर लिखते हैं कि जब पत्र द्वारा मने करने से कुछ न बना तो वह स्वयम् लेखराम को समझाने के लिए गए। उस समय उत्तर में लेखराम ने जो दृष्टान्त दिया उसे महाशय गण्डाराम जी इस प्रकार वर्णन करते हैं—"एक मिसाल सुनाई वह यह है—एक राजा के सामने नट तमाशा करने वाले आए। उन को राजा ने ५००) रु० इनाम देने की प्रतिज्ञा कर के कहा कि योगी की नक़ल उतारो। एक नट ने इनाम के लालच से योगी की ठीक ज्यों की त्यों नक़ल उतारी किन्तु समाधि छोड़ते ही हाथ इनाम के लिए पसार दिया। मतलब इस मिसाल से यह था कि गृहस्थ में रह कर दो काम नहीं हो सक्ते हैं। तब हम सब निराश हो गए और जिस देवी का नाता लेखराम के साथ हुआ था उसका विवाह उनके छोटे भाई तोताराम के साथ कर दिया।"

इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम के पुराने उस्ताद तुलसीदास जी उन्हें मिलने के लिए पेशावर गए तो उन से भी नौकरी छोड़ कर संस्कृत पढ़ने के लिए देशान्तर जाने की इच्छा प्रकट की थी।

आर्य्यसमाज में प्रवेश
और
ऋषि दयानन्द का सत्सङ्ग ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि पहिले पहिल वैराग की लहर दृढ़ संकल्प लेखराम के हृदय में एक नवीन वेदान्ती सिक्ख सिपाही के सतसङ्ग से उठी थी। उसी लहर ने मन रूपी समुद्र के जल को विविध रूपों में बदल कर लेखराम को कहीं रासलीला के भंवर में घुमाया और कहीं गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों से घृणा दिलाई। किन्तु लेखराम की बुद्धि एक जागृत शक्ति थी; उसकी दृष्टि में यह भ्रम ठहर नहीं सक्ता था कि जीवात्मा ही ब्रह्म है और इस लिए वह कभी भी अपने उस समय के धार्मिक विचारों से सन्तुष्ट नहीं हो सक्ता था। इस समय की दो घटनाएं लेखराम के उस स्वभाव को, जो उसे पैत्रिक दाय में मिला था, बहुत विस्पष्ट करती हैं; इस लिए उनका वर्णन लाभदायक होगा।

पेशावर में नौकरी के दिनों अकेले होने के कारण आटा लेकर रोटी बनवाने तन्दूर वाले की दूकान पर जाया करते थे। एक दिन शहर में किसी आदमी को एक बैल या गाय ने सींगों से घायल किया जिस का चर्चा सारे बाज़ार में फैल गया। तन्दूर वाले की दूकान पर भी यही चर्चा थी।

पण्डित लेखराम तत्काल ही बोल उठे—"क्यों न गाय के सींग पकड़ लिए ? और नहीं तो लाठी मार कर हटा देना चाहिए था।" लोगों ने कहा—"महाराज गौ माता पर कैसे हाथ उठाना ?" इस पर अक्खड़ लेखराम के होंठ फड़कने लगे, आंखें लाल हो गईं और अधिक अटक अटक कर बोले—"अगर मेरे सामने गाय या बैल आवे और मुझे मारने लगे और जान का ख़तरा हो तो मैं—तलवार से उस का सिर उड़ा दूं।" इतना कहना था कि लोगों ने "दुष्ट ! हत्यारा ! इत्यादि" दुर्वचनों का तूफ़ान मचा दिया और तन्दूर वाले ने लोगों के जोश से डर कर आटा ज्यों का त्यों लौटा दिया।

एक ओर तो रुकावट सामने आने पर इतना अक्खड़पन और दूसरी ओर—एक और घटना सुनाता हूं जिस से पता लगता है कि धर्म्म की जिज्ञासा ने उस तङ्ग ज़माने में भी लेखराम को उदार सार्व भौम हृदय का स्वामी बना दिया था। पेशावर-से एक महाशय लिखते हैं कि पण्डित लेखराम के मित्र महता कृपाराम जी ने उन्हें महम्मदी मत की पुस्तकों को अधिकतः पाठ करते देख कर एक दिन पूछा कि आप मुसलमानी मज़हब की पुस्तकों को इतना क्यूं पढ़ते हैं, क्या यदि महम्मदी मत आपको सच्चा लगे तो आप मुसलमान हो जा-

यंगे ।" वहां उत्तर के लिए कुछ सोचने की आवश्यकता न थी; उत्तर मिला—"बेशक ! अगर दस घड़े रक्खे हों और यह मालूम न हो कि ठन्डा पानी किस में है तो जब तक थोड़ा थोड़ा पानी सब में से न पिया जाय तब तक कैसे पता लग सक्ता है कि किस घड़े का पानी ठन्डा और मीठा है । इसी तरह सब मतों की पुस्तकों की पड़ताल करके पता लगाना चाहिए कि सच्चा धर्म्म कौनसा है ।"

इन दो उक्तियों से ही पण्डित लेखराम के स्वभाव के उतराव चढ़ाव का कुछ पता लग जाता है ।

इन्हीं दिनों, जब गीता की सटीक पुस्तक काशी से मंगाकर उसे व्याख्या सहित पढ़ रहे थे पण्डित लेखराम को मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकों के देखने की उत्कन्ठा हुई। तत्काल ही धर्म के प्यासे ने अलखधारी के सब प्रसिद्ध ग्रन्थ मंगा लिए जो पेशावर में आर्यसमाज स्थापन करते ही, अपने अन्य ग्रन्थों सहित, उस आर्यसमाज की भेंट कर दिए। पेशावर आर्यसमाज के पुस्तकालय की सूची भी पण्डित लेखराम की ही लिखी हुई है, जिस में ऋषिदयानन्द से मिली हुई अष्टाध्यायी के साथ साथ "तोहफ़तुलइसलाम", "पादाशुलइसलाम" इत्यादि के नाम भी दर्ज हैं।

पंजाब में मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी के लेखों ने वैदिकधर्म के पुनर्जीवित करने में वही काम दिया जो ईसाई मत की स्थापना

से पहिले "यहुन्ना" [John the BaPtis] के व्याख्यानों ने किया था। यदि क्रिश्चियन चर्च को ईसा का उपदेश समझाने के लिए यहुन्ना के व्याख्यानों की आवश्यकता थी तो आर्यसमाज को भी ऋषिदयानन्द का उद्देश समझने के लिए अलखधारी की प्रचण्ड चोटों की ज़रूरत अवश्य थी। उस समय के नवशिक्षित पंजाबी, और कुछ कुछ संयुक्त प्रान्ती भी, अलखधारी को अपना "पैग़ाम्बर" और "राहबर" मानते थे। अलखधारी के खुले स्पष्ट शब्द कुरितियों से पीड़ित आर्य सन्तान को उत्साहित करने और उन्हें अन्धपरम्परा की कड़ी साङ्कलों को तोड़ने का बल प्रदान करने में बिजुली का काम देते थे; किन्तु फिर भी पुराने ढर्रे के पौराणिकों पर उन का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। पौराणिक गढ़ को तोड़ने के लिए वेदशास्त्र रूपी प्रबल शस्त्रों की आवश्यकता थी, जिन के चलाने में निपुण एक ही कोपीनधारी सन्यासी शताब्दियों के पश्चात् दिखाई दिया था। अलखधारी ने उसी अखण्ड शस्त्र धारी बाल ब्रह्मचारी की शरण ली, और अपने लेखों की पुष्टी में स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यायों और लेखों का प्रमाण दिया। यही कारण था कि मुंशी कन्हैयालालअलखधारी के सब चेले अन्त को ऋषि दयानन्द की पवित्र शरण में आए और आर्यसमाज के उत्साही सभासद बने। इसी प्रकार के सुशिक्षित युवक वीरों में से लेखराम एक था।

अलखधारी की पुस्तकों को पढ़ने से ही लेखराम को ऋषि दयानन्द के नाम और काम का पता लगा। तब इन्होंने अपने माने हुए अद्वैत मत की पड़ताल की और जब तक पूरी छानबीन करके अपने आपको परमात्मा के सेवक, पुत्र, भक्त न समझ लिया तब तक दम न लिया। इन्हीं दिनों समाचार पत्रों में ऋषि दयानन्द के धर्म्म प्रचार के काम की धूम मची हुई थी। लेखराम ने पत्र व्यवहार आरम्भ करके ऋषि प्रणीत ग्रन्थों को मंगाया और सम्वत् १६३७ के अन्तिम भाग में ही पेशावर में आर्य्य समाज स्थापित कर दिया।

आर्य्य समाज तो स्थापन हुआ किन्तु उस की सीमा लेखराम से बाहर न थी। जिन को मृत्यु के समय धर्म्म की मूर्ति माना गया और जिन के नाम के साथ पण्डित शब्द अपने आप को स्वयम् सम्मानित समझता था, उन्हें उस समय "लेखू" कह कर पुकारा जाता था। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—"माया तेरे तीन नाम। परसू, परसा, परसराम।" इसी प्रकार कहा जा सक्ता है कि आत्मसमर्पण करने वाले लेखराम भी लेखू से लेखराम और फिर "धर्म्म वीर पण्डित लेखराम" बन गए। लेखू महाशय उस समय पेशावर नगर में "माई रज्जी की धर्म्मशाला" के अन्दर रहते थे। उसी स्थान में आर्य्य समाज के साप्ताहिक नहीं प्रत्युत दैनिक अधिवेशन होने लगे। न कोई नोटिस लगाया जाता और नहीं ढिंढोरा पिट-

बाया जाता ; वैदिक धर्म्म का सिपाही लेखू अपने तीन चार मित्रों को समझाने बैठता। पांच में चार मित्रों को तो समझा लिया और वे "खुद खुदा" कहलाने से लज्जित हो कर परम-पिता की शरण में आगए, किन्तु पांचवां कट्टर नवीन वेदान्ती था जिस ने लेखू को भी अद्वैत का पहला पाठ पढ़ाया था। जब वह किसी प्रकार भी क़ाबू न आया तो लेखू से "लेखराम" बने हुए मित्र ने कहा—"कमबख़्त ! तेरी समझ में कुछ नहीं आता तब भी हमारी ख़ातिर से ही आर्य्य बन जा। मित्र मण्डल तो न टूटेगा।" यह युक्ति प्रबल थी, काट कर गई। पांचों ने मिल कर काम करना आरम्भ किया। कहते हैं कि "एक एक और दो ग्यारह" होते हैं। यहां तो—"पांच पंच मिल कीजे काज। हारे जीते न आवै लाज" वाला मामला हो गया था।

धर्म्म जिज्ञासु लेखराम ने आर्य्य समाज तो स्थापन कर लिया और नियम पूर्वक नित्यकर्मों का पालन भी आरम्भ कर दिया किन्तु दूसरों को समझाने में कभी कभी स्वयम् डांवा-डोल हो जाते। अन्यसर्व सिद्धान्तों का तो बड़ी प्रबल युक्तियों से मन्डन करते किन्तु जब अपने नवीन वेदान्ती मित्रों से बात चीत होती तो कभी कभी निरुत्तर हो जाते। फिर थे भी तो अभी तक सुन्नी आर्य्य ! एक लोकोक्ति है कि मुसलमानी मत

सब रास्ते साफ़ करता और तलवार के ज़ोर से लोगों को मुहम्मदी बनाता जब अटक नदी के किनारे पहुंचा तब गुरुनानक ने कहा—"अब तो अटक।" गुरुमहाराज के इस आदेशानुसार असली मुसलमानी मत अटक के उसपार ही रहगया; तब मुल्लाओं ने अपनी बाङ्ग देनी शुरु की जिस को सुन कर अटक के इस पार वाले हिंदू भी मुसलमान होने लगे। इसी लिए हिन्दुस्तान के मुसलमान सुन्नीकहलाते हैं।

उपरोक्त लोकोक्ति के अनुसार लेखराम जी अबतक सुन्नी आर्य ही थे। उन्होंने मन में ठान लिया कि आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द से संशय निवृत्ति करने, और उन से आशिर्वाद लेने, के लिए उन कीसेवा में अवश्य जाना चाहिये। ऐसा निश्चय दृढ़ करते ही साढ़ेचार वर्षों की नौकरी के पश्चात् एक मास की पहली छुट्टी (५ मई सं. १८८० ई. से) लेकर ११ मई को ऋषि दयानन्द के दर्शनार्थ अजमेर नगर की ओर चल दिए। लाहौर, अमृतसर, मेरठ आदि नगरों के प्रसिद्ध आर्यसमाजों में ठहरते हुए १६ मई की रात को अजमेर जा पहंचे और १७मई को सेठ फ़तेहमल जी की वाटिका में पहुंच कर ऋषि दयानन्द के, पहिली और अन्तिम बार, दर्शन किये। इस समागम का हाल आर्य पथिक ने अपने शब्दों में इसप्रकार दियाहै—

स्वामी दयानन्द के दर्शन से यात्रा के सब कष्ट विस्मृत हो गए और उनके सत्योपदेशों से सर्व संशय निवृत्त होगए। जयपुर में मुझ से एक बङ्गाली ने प्रश्न किया था कि आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी व्यापक है; दो व्यापक किस प्रकार एक स्थान में इकट्ठे रह सक्ते हैं। मुझसे इसका कुछ उत्तर बन न आया।

मैंने यही प्रश्न स्वामी जी से पूछा। उन्हों ने एक पत्थर उठा कर कहा "इस में अग्नि व्यापक है वा नहीं?" मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा—"मट्टी?" मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा—"परमात्मा?" मैंने कहा कि वह भी व्यापक है। तब कहा—"देखा! कितने पदार्थ हैं, परन्तु सब इस में व्यापक हैं। असल बात यह है कि जो (वस्तु) जिस से सूक्ष्म होती है वही उस में व्यापक हो सकती है। ब्रह्म यतः सब से अति सूक्ष्म है अतः सर्व व्यापक है।" इस से मेरी शान्ति हो गई।

मुझे उन्हों ने आज्ञा दी कि जो संशय मुझे हों उन को निवारण करलूं। मैंने बहुत सोच समझ कर दश प्रश्न लिखे जिन में से तीन मुझे याद हैं, शेष सब भूल गए—

प्रश्न—जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइए।

उत्तर—यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय सारा जीव ब्रह्म का भेद बतलाता है।

प्रश्न—अन्य मतों के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिए वा नहीं?

उत्तर—अवश्य शुद्ध करना चाहिए।

प्रश्न—बिजुली क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न होती है?

उत्तर—विद्युत सर्व स्थानों में है और रगड़ से उत्पन्न होती है। बादलों की विद्युत भी बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है।

अन्त में मुझे आदेश दिया कि २५ वर्ष (की आयु) से पहले विवाह न करना।

ऋषि दयानन्द जी के थोड़े ही सत्सङ्ग ने लेखराम के धार्मिक विचारों को दृढ़ कर दिया और इसी लिए उस के पश्चात् हम वैदिक धर्म्म पर उनका विश्वास चट्टान की तरह दृढ़ पाते हैं।

धर्म्म कार्यों में अधिक अनुराग
और
दासत्व से मुक्ति।

अजमेर से लौटते ही पण्डित लेखराम का पहला कार नामा उन के सारे शेष जीवन के पुरषार्थ का एक दृष्टान्त मात्र है। एक दिन आप अपने पुराने परिचित सन्त दामोदरदास वेदान्ती के पास गए। सन्त जी ने कहा कि सब ब्रह्म ही ब्रह्म है। लेखराम ने पूछा "महाराज ? आप भी ब्रह्म हैं मैं भी ब्रह्म हूं और यह पुस्तक भी ब्रह्म है ?" उतर हां में मिलते ही पण्डित लेखराम ने पुस्तक (जिस में उपनिषदों का गुटका था) उठाली और वेदान्ती जी के मांगने पर फिर उनको न लौटाई। वह पुस्तक सम्वत् १९५२ तक पेशावर आर्यसमाज के पुस्तकालय में ग्रन्थकर्ता ने स्वयम् देखी थी। ऋषि दयानन्द के प्रत्यक्ष सत्सङ्ग ने हमारे चरित्रनायक के मन पर स्वतन्त्रता तथा धर्मभक्ति का रङ्ग अधिक गाढ़ा करदियाथा, इस लिए अजमेर से लौटकर उन्हें दिन रात धर्मप्रचार की ही धुन लगी रहती थी। पेशावर अर्यसमाज की ओर से उर्दू का मासिकपत्र "धर्मोपदेश" नामी जारी कराया जिसके सम्पादन का भार भी स्वयम् ही उठाया। इस के साथ ही जनसाधारण में निडर हो कर मौखिक धर्मोपदेश आरम्भ कर

दिए । एक दिन विज्ञापन दिया कि मद्यपान निवारणार्थ व्याख्यान देंगे । व्याख्यान अंजुमन के हाल में था जिसकारण ज़िले के डिपुटीकमिश्नर अन्य अंग्रेजों सहित पधारे । बहुत से सेनाधिकारी भी उपस्थित थे । लेखराम का व्याख्यान युक्ति युक्त तथा प्रभाव शाली हुआ । एक फौजी कप्तान ने उस का समर्थन किया और बतलाया कि उसने भी अपनी सेना में मद्यपान को बन्द करा दिया है ।

इस समय के पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट को जब पता लगा कि उनका नक़शा नवीस सार्जेन्ट लेखराम बहस मुबाहसे में बहुत ताक़ है तो प्रायः अपने डिपुटी रीडर वज़ीरअली के साथ उनका मुबाहसा (शास्त्रार्थ) कराकर स्वयम् आनन्द लूटा करते। मुझे बतलाया गया है कि यह साहेब बहादुर प्रायः लेखराम के कथन काही समर्थन किया करते थे ।

किन्तु "सब दिन जतन एक समान" अपनी धुनमें मस्त लेखराम को उस गहरी नींद से जागना पड़ा क्योंकि नए पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट के आने पर बहुत सी तबदीलियां हुईं। इसी चक्र में लेखराम को पेशावर शहर से थाना "सुआबी" में बदला गया । बाहर जाकर भी अपने प्रिय मासिक पत्र धर्मोपदेश के लिए यथाशक्ति लेख भेजते रहे और समाज का मासिक चन्दा १) सैकड़ा के स्थान में बराबर ५) सैंकड़ा देते रहे । जाने को पेशावर से बाहर चले तो गए किन्तु धर्म प्रचार की इच्छा रूपी प्रचण्ड अग्नि कहीं थोड़ा ही मन्द पड़ गई थी, वहां पर भी महम्मदियों से बहसमुबाहसा जारी रहा । एक दिन पुलिस इन्स्पेक्टर ने, जो थाने का मुला-

हिज़ा करने आया था, लेखराम को मुबाहिसे में फंसा लिया। लेखराम भला धर्म के मामले में कब लिहाज़ करने वाले थे, उत्तर मुंह तोड़ दिए। उस समय तो इन्सपेक्टर साहब अपना सा मुंह लेकर चुप हो गए किन्तु दूसरे दिन ही "अदूल हुकमी" (आज्ञा भङ्ग) के अपराध में रिपोर्ट कर दी। तब १२ जून १८८३ को सदर से हुकुम आया कि "छः मास के लिए लेखराम का एक दर्जा तोड़ दिया जावे और वह थाना कालूखां में बदला जावे।"

सुआवी के थाने में रहते हुए जो उर्दू भारत-दण्ड—संग्रह की पुस्तक लेखराम के पास थी उस के पहले पृष्ठ पर एक लष्टम पष्टम सा चित्र खींच कर आपने उस के ऊपरले भाग में "ओ३म्" लिखा था और उस के ऊपर एक झन्डे की शकल बनाई; अर्थात् उसी समय से यह निश्चय दृढ़ कर लिया था कि ओ३म् का झन्डा किसी दिन सारे भूमण्डल पर फहरायगा और सर्वमतों का शिरोमणि बनेगा।

थाना सुआवी में होते हुए ही लेखराम के साथ महम्मदियों का द्वेष बहुत कुछ बढ़ चुका था; उस को अपने धर्म-कार्यों के लिए समय भी कम मिलने लगा। "सत्योपदेश" के जीवन का सारा निर्भर केवल अकेले लेखराम की लेखनी पर ही न था प्रत्युत उसकी आर्थिक दशा को ठीक रखने का बोझ उठाने वाला भी कोई और न था। जब पेशावर आर्यसमाज ने अधिक घाटा देख कर सत्योपदेश को बन्द करने की ठानली तो एक मास के घाटे के लिए ५) लेखराम ने ही भेजदिए। इस पर

भी जब मासिकपत्र की इतिश्री काही निश्चय हुआ तो पण्डित लेखराम ने अपने चचा को लिखा—"जो निश्चय आपने तथा आर्यसमाज (पेशावर) के सर्व सभासदों ने 'धर्मोपदेश" को बन्द करने के विषय में किया है, वह तो शिरोधार्य है परन्तु यह वाक्य कि हमारी समाज की उन्नति नज़र नहीं आती, यह पांच छः रुपये मासिक समाज की उन्नति में व्यय करना चाहिये, इत्यादि मुझे चिन्ता (में डालते हैं)............मज़मून रिसाला धर्मोपदेश, जो मैंने भेजा था, लौटादीजिए, ताकि उसको आर्य समाचार मेरठ में छपवाया जावे, और (मेरे) मौजूदा पांच रुपये में से ३) महम्मद मालिक मतबाशरीफ़ी को देदें और २) अपने हिसाब में जमा फ़रमावें।" ये शब्द स्वयम् बोल रहे हैं, इन पर किसी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं।

फिर सिवाय इस के और क्या हो सक्ता था कि रिसाला सत्योपदेश को बन्द कर दिया जाय। लेखराम के इस पहले मानसिक बच्चे का अन्त्येष्टि संस्कार मार्च सं० १८८३ ई० को हो गया। थाना कालूखां में पहुंचने से पहले ही लेखराम के कट्टरपन की धूम महम्मदियों में मची हुई थी, किन्तु इस दुष्कीर्त्ति के होते हुए भी वह अन्य मतावलम्बियों को अपने धर्म के सिद्धान्त समझाने के उद्देश्य से ऐसा प्यार करते थे कि पक्षपातियों से न भड़काए हुए सर्व साधारण मुसलमान उन के साथ प्रेम करने के लिए बाधित हो जाते। थाना कालूखां के विषय में मुझे केवल पेशावर की पुलिस आज्ञा पुस्तक से दो आज्ञाओं की नकल मिली है, जिन से पता लगता है कि वहां के मुसलमान सब इन्सपेक्टर और सारजन्ट लेखराम का

एक दर्जा, किसी "हज़रत-शाह चौकीदार" के मुक़द्दमें में ग़फ़लत (असावधानी) दिखाने के कारण तोड़ दिया गया था। ये दोनों आज्ञाएं ६ जून, सं० १८८४ ई० को निकलीं, किन्तु इन के निकलने से पहले ही लेखराम सार्जन्ट को दफ़्र पुलिस में तबदील कर दिया गया था और वहां से उसे साहब असिस्टेन्ट मजिस्ट्रटे की पेशी में लगाया गया। यह बात प्रसिद्ध थी कि अपराध तो थाना कालूखां के मुसलमान सब इन्स्पेक्टर अकेले का था, किन्तु लेखराम अपनी निडर हाज़िर जवाबी के कारण बिना अपराध के ही दण्डनीय समझा गया। मुसलमान पुलिस अफ़सरों ने समझा कि पेशावर में बुलवा कर वे लेखराम का मुंह बन्द कर देंगे, किन्तु इस अत्याचार ने दासत्व की बेड़ियों के काटने और लेखराम का मुंह स्वतन्त्रता से खुलवाने में प्रबल सहायता दी, और २४ जुलाई सं० १८८४ ई० को सदा के लिए स्मरणीय दिन लेखराम ने पुलिस की नौकरी से त्याग पत्र दे दिया और लिख दिया कि दो महीने की क़ानूनी मियाद के पीछे उसे रोकने का किसी को भी अधिकार न होगा। दो मास के पश्चात् २४ सितम्बर, १८८४ ई० को यह त्याग पत्र फिर पेश हुआ। लेखराम को त्याग पत्र लौटाने के लिए अंग्रेज़ हाकिमों ने भी बहुतेरा समझाया, किन्तु वहां तो लगन ही और लग चुकी थी; हमारे वीर चरित्रनायक ने किसी की न सुनी और ३० सितम्बर १८८४ ईसवी से त्याग पत्र की मन्जूरी का हुकुम २४ सिम्बर को ही अपने हाथ से लिख और निकलसन साहब के उस पर हस्ताक्षर करा के मनुष्यों के दासत्व से सदा के लिए मुक्त हो गए। इस दासत्व की

सांकल के कटते ही लेखराम सार्जेन्ट पण्डित लेखराम बन गए।

यह बात प्रसिद्ध है कि यवनों के संसर्ग से पञ्जाब प्रान्त में मांस भक्षण का प्रचार आर्य्य जाति में भी बहुत था और सीमा प्रान्त के ज़िलों में से पेशावर तो उस समय भी मांसाशियों का गढ़ समझा जाता था। यही कारण था कि पञ्जाब के पहले आर्य्य समाजियों ने अहिंसा धर्म्म के पालन की ओर अधिक रुचि नहीं दिखाई थी। मूर्ति पूजा और मृतक श्राद्ध के खन्डन में जो बड़े अग्रणी थे वे सन्ध्या अग्निहोत्र के अभ्यास और मद्य मांसादि से वैराग को आवश्यक नहीं समझते थे कारण यह था कि पहले पहल बहुधा नक़ली और फ़सली आर्य्य बहुत थे। किन्तु पण्डित लेखराम असली आर्यों में एक ऊंचा पद रखते थे। मद्य तो पहले से ही उन के लिए घृणित वस्तु थी किन्तु मांस भक्षण को भी महापापों में से एक समझते थे। सन्ध्या में अनध्याय को वह सब से बढ़ कर पाप मानने लगे थे। मुझे यह पता नहीं लगा कि उन्हीं दिनों नित्य हवन का प्रारम्भ किया था वा नहीं, किन्तु उन के अन्य चरित्रों से यही अनुमान होता हैं कि वैदिक धर्म्म की शरण में आते हुए उन्हों ने सच्चे धर्म्म की प्राप्ति को जीवन और मृत्यु का प्रश्न समझा था।

धर्म्मान्दोलन में अनन्य अनुराग।

यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—"होनहार बिरवा के चिकने चिकने पात"। पण्डित लेखराम पर यह लोकोक्ति सर्वाङ्ग में

चरितार्थ थी। जिस आर्य्य पथिक् ने धर्म्म प्रचार के लिए यात्रा करते हुए दिन रात को एक कर देना था, जिस लेखवीर ने सत्यधर्म्म की रक्षा के लिए अपूर्व ग्रन्थ लिखने थे और जिस शास्त्रार्थ के धनी ने वैदिक धर्म्म के विरोधियों को स्थान स्थान पर निरुत्तर करना था, उस को आर्य्यसमाज में प्रवेश करते ही शास्त्रार्थ तथा लेख का अभ्यास हो चला था।

पेशावर आर्य्य समाज के भाइयों की कृपा से मुझे लेखराम की सभासदी के समय के सब रजिस्टर मिल गए हैं। एक ओर तो समाज का सारा आय व्यय का हिसाब लेखराम के हाथ का लिखा हुआ है, और दूसरी ओर आए गए पत्रों की प्रति लिपि लग भग उन्हीं के हाथ की है। आए हुए पत्रों की नकल तो किसी अन्य के हाथ की है, किन्तु जो पत्र भेजे गए उन का सारांश प्रायः पण्डित जी का अपना लिखा हुआ है। ८ फवरी १८८२ ई० को आपने पादरी एम० वेरी साहेब से इन्जील के ईश्वरीय ज्ञान होने तथा मुक्ति के लिए ईसा पर ईमान लाने की ज़रूरत पर शास्त्रार्थ का घोषणा पत्र भेजा। इस का जो उत्तर पादरी साहेब की ओर से आया वह बड़ा गोल-मोल है। इस समय समाज के मन्त्री होते हुए भी पण्डित लेखराम अपने आप को "मैनेजर पेशावर आर्य्य समाज" लिखा करते थे और थे भी तो सर्व प्रकार के प्रबन्धकर्त्ता ये ही।

पेशावर शहर से जब पुलिस की नौकरी में बाहर बदल गए थे, तब भी मासिक चन्दा देते हुए आर्य्य समाज पेशावर के सभासद्‌ बराबर बने रहे। एक बार किसी काम के लिए पेशावर

आए तो साप्ताहिक अधिवेशन में, जो एक तहसीलदार की धर्मशाला में हो रहा था, सम्मिलित हुए। साप्ताहिक अधिवेशन की समाप्ति पर अन्तरङ्ग सभा के सभासद् बैठे रहे और विचार यह होने लगा कि जिन तहसीलदार महाशय की धर्मशाला अधिवेशनों के लिए मिली है उन को ही समाज का प्रधान बनाया जावे। तहसीलदार साहब भी विराजमान थे। पण्डित लेखराम ने बिना सङ्कोच के कहा—"यह मांस खाते और शराब पीते हैं; ऐसा आदमी प्रधान नहीं होना चाहिए।" अन्य सब सभासद् तहसीलदार साहब को प्रधान बनाने पर तुल गए। तब पण्डित लेखराम अप्रसन्न हो कर उठ गए, क्योंकि ऐसे विचार को सुनना भी वह पाप समझते थे।

सं० १८८२ ई० में जब पं० लेखराम अभी पेशावर में ही थे ऋषि दयानन्द की ओर से उन्हें दो पत्र मिले। एक के साथ गोरक्षा विषयक प्रार्थना पत्र प्रजा के हस्ताक्षरों के लिए था और दूसरे में पंजाव में हिन्दी के प्रचार के लिए शिक्षा कमीशन को मेमोरियल (Memorial) भेजने की प्रेरणा थी। दोनों कार्य पण्डित लेखराम ने बड़े उत्साह से कराए।

अभी पण्डित लेखराम पेशावर से बाहर थानों में ही घूम रहे थे कि उन के पास क़ादियां के "मिर्ज़ा गुलाम अहमद" की बनाई पुस्तक "बुराहीन अहमदिया" पहुंच गई, जिस में मिर्ज़ा जी ने पहले महल पैग़म्बरी का दावा किया था, और साथ ही यह पता लगा कि मिर्ज़ा गुलाम अहमद के बड़े चेले हकीम नूर-उद्दीन की सङ्गत से जम्मू में एक ठाकुरदास नामी हिन्दू मह-

म्मदी मतस्वीकार करने को तय्यार है। पण्डित लेखराम तीन चार बार छुट्टी लेले कर उसे समझाने के लिए जम्मू गए और इन का पुरुषार्थ इतना फलदायक हुआ कि ठाकुरदास क़ादियानी का गुलाम बनने से बच गया।

इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम ने मिर्ज़ा की "बुराहीन" के चारों हिस्से पढ़ डाले और जब चौथे भाग में आर्य समाज और आर्य सिद्धान्तों पर विषमय आक्रमण देखे तो तत्काल ही उस पुस्तक का उत्तर लिखना आरम्भ कर दिया। आर्य पथिक को जिस बात की धुन लगती उस के आरम्भ करने में एक पल की देर करना भी उन्हें दूभर हो जाता था। वहां नया काग़ज़ मंगाने को समय कहां था, आर्य समाज पेशावर के रजिस्टर पर ही उत्तर घसीटने लग गए।

जम्मू में पण्डित लेखराम पण्डित नारायणकौल के यहां ठहरे जो प्रसिद्ध पण्डित मनफूल के भाई थे। यह महाशय अरबी तथा फ़ारसी के बड़े विद्वान् थे। इन से पण्डित लेखराम को "बुराहीन अहमदिया" के खण्डन में बड़ी सहायता मिली।

धर्मान्दोलन तथा धार्मिक विषयों के विचार में तो लगन पहले से ही लग चुकी थी; ऋषि दयानन्द की, धर्म तथा देश के लिए, शोकजनक मृत्यु ने और भी अधीर कर दिया और सारे संसार को वैदिक धर्म के झण्डे के नीचे लाने का कर्तव्य भी लेख-वीर ने अपना ही समझ कर धर्म वीर का पद प्राप्त करने की ओर पग उठाया। कोई आर्य जाति में से ईसाई वा मुसलमानी मतों की ओर झुके तो उसे बचाने का बीड़ा लेखराम

उठाते थे; जन्म के ईसाई और मुसलमान को वैदिक धर्म की शरण में लाने का अपना कर्तव्य वह बतलाते थे; वैदिक धर्म पर कोई भी आक्षेप हो उस का उत्तर देना इन का कर्त्तव्य था और प्रत्येक प्रकार के नास्तिकत्व का खण्डन इन का ही धर्म था।

इन्हीं दिनों यह समाचार गरम था कि मुज़फ़्फ़र नगर के रईस, चौधरी घासीराम जी महम्मदी मत की ओर झुके हुए हैं। ऐसा भी अनुमान होता है कि शायद उस अवसर पर छुट्टी न मिलने के कारण ही पंडित लेखराम ने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया हो। मेरे चचा उन दिनों मुज़फ़्फ़रनगर में पुलिस इन्सपेक्टर थे। उन से मुझे पता लगा था कि आर्य उपदेशकों ने महम्मदी मौलवियों को लाजबाब कर दिया था।

कुछ ही हो पण्डित लेखराम ने अपना त्यागपत्र स्वीकार होने तक क़ादियानी मिर्ज़ा के जवाब में "तकज़ीब बुराहीन–ए–अहमदिया का प्रथम भाग' तय्यार कर के लिख लिया था।

दासत्व से मुक्त होते ही सब से पहले आर्य समाज रावलपिन्डी के वार्षिकोत्सव पर पहुंचे उन दिनों बड़े वक्ता न थे कि विना लिखे कोई विषय निभा सकें किन्तु फिर भी एक लेख बद्ध व्याख्यान उस उत्सव में पढ़ा। उस का शीर्षक था— "आर्य धर्म के आलमगीर होने के सबूत और उस के आइन्दा तरक़्क़ी के निशान मज़बूत"। क़ाफ़िया मिलाने का पहले से ही शौक़ था। यह व्याख्यान लाला गङ्गाराम धम ने मेरे पास रावलपिन्डी आर्य समाज के कार्यालय से निकाल कर भेजा

था जो २१ तथा २८ आषाढ़, सम्वत् १९५४ के सद्धर्म-प्रचारक में छप चुका है। इस व्याख्यान में पण्डित लेखराम ने यह बड़ा उदार भाव प्रकट किया था कि:—

"स्वामी दयानन्द और बाबा नानक जी के ख़यालात वाहिद थे। मेरे ख़याल में वह (बाबा नानक जी) वेदोक्त धर्म को तरक़्क़ी देने वाले थे और हत्तलवसा (यथा शक्ति) उन्होंने आर्य्य धर्म फैलाने में बहुत कोशिश की।" रावलपिन्डी से गुरुदासपुर पहुंच कर एक ओर तो मिर्ज़ा साहेब को शास्त्रार्थ के लिए चैलेञ्ज भेजा और दूसरी ओर १ अक्टूबर १८८४ को विज्ञापन देकर बड़ी जन उपस्थिति में उन के आक्षेपों के उत्तर पढ़े गए। मिर्ज़ा गुलाम अहमद ने तो आना ही क्या था; हां आर्यजगत् में जो खलबली मिर्ज़ा के ग्रन्थ ने मचाई थी वह दूर हो गई। पण्डित लेखराम की यह पहली पुस्तक ऐसी ज़बरदस्त समझी गई कि बहुत लोगों ने इस की हस्तलिखित प्रतियां, बड़ा व्यय कर के, प्राप्त कीं।

गुरुदासपुर में व्याख्यान देने के पश्चात् पण्डित लेखराम लाहौर लौट गए और वहां कुछ दिनों, उपदेश का कार्य भी जारी रखते हुए, संस्कृत व्याकरण का अभ्यास करते रहे। पण्डित लेखराम इस समय दृढ़ता से संस्कृत साहित्य विशेषतः वैदिक साहित्य का स्वाध्याय नियम पूर्वक गुरुमुख से करना चाहते थे, किन्तु यह काम प्रथम आश्रम की शान्त अवस्था में ही हो सक्ता है। पण्डित लेखराम के अन्दर, संसार में अविद्या का राज्य देख कर, बड़ी भारी हल चल मच चुकी थी। ऋषि

दयानन्द की अकाल मृत्यु ने उन का उत्तर दातृत्व बहुत बढ़ा दिया था, इस लिए जब उस क़ादियानी मिर्ज़ा की ओर से, जिस के "झूठे दावों की तरदीद" यह ग्रन्थ रूप में कर चुके थे, एक विज्ञापन देखा, जिस में उस ने महम्मदी मत की पुष्टि में चमत्कार (Miracle) दिखाने की प्रतिज्ञा की थी, तो इन से न रहा गया।

सिंह को गुहा पर सीधा आक्रमण।

मिर्ज़ा जी ने अपने इश्तिहार में सिंह की तरह चौमुखी लड़ाई का घोषणा पत्र दिया था। उन्हों ने सर्व मतस्थ पुरुषों को इस लाभ की दावत दी थी और अपने आप को "खुदा का पैग़ाम्बर" सिद्ध करने के लिए प्रतिज्ञा की थी कि यदि क़ादियां में एक वर्ष तक रख कर वह कोई दैवी चमत्कार (आसमानी निशान) न दिखा सकें तो इस प्रकार एक वर्ष रहे हुए मनुष्य को २००) मासिक के हिसाब से २४००) देंगे। पण्डित लेखराम ने जब यह इश्तिहार पढ़ा उस समय वे अमृतसर में थे। विज्ञापन पढ़ते ही उन्हों ने ३ अप्रैल, १८८५ ई० को मिर्ज़ा जी के नाम पत्र लिखा जिस में उन की शर्तों को स्वीकार कर के प्रतिज्ञा की कि जिस समय वह २४००) सरकारी कोष में दाख़िल कर ने की सूचना देंगे उसी समय स्वयम् क़ादियां में पहुंच जायंगे। इस के उत्तर में मिर्ज़ा ने एक नई अड़चन लगाई कि वह साधारण पुरुषों से वाद विवाद नहीं करना चाहता, उस के साथ कोई अपनी सम्प्रदाय का प्रमाणिक और प्रसिद्ध आदमी ही जुटे तो वह तय्यार होगा।

यह पत्र पण्डित लेखराम के पास लाहौर में ६ अप्रैल १८८५ को पहुंचा और उसी दिन उन्होंने इस का उत्तर दे दिया, जिस में पहले मिर्ज़ा के नए अड़चन का खण्डन किया और लिखा कि उन्हें धन का लालच इस असली मुबाहसे के लिए नहीं खींच रहा प्रत्युत सत्या सत्य के निर्णय के लिए वह तय्यार हो कर मैदान में आना चाहते हैं। इस के पश्चात् मिर्ज़ा जी ने नई बाधा खड़ी की। उन्हों ने पण्डित लेखराम से भी २४००) जमा कराने की नई याचना की। इसी प्रकार प्रत्येक नए पत्र में मिर्ज़ा जी ने नए नए अड़ङ्गे लगाए, जिन के मुंह तोड़ परन्तु सभ्यतामय उत्तर पण्डित लेखराम ने दिए। यह पत्र व्यवहार ५ अगस्त १८८५ तक बराबर जारी रहा किन्तु परिणाम कुछ भी न निकला।

इसी अन्तर में पण्डित लेखराम ने अमृतसर और लाहौर में प्रचार करने के पश्चात् १८ अप्रैल को पेशावर को प्रस्थान किया। आर्य समाज पेशावर के पहले भी प्रधान थे। २५, २६ अप्रैल को अपने प्रिय आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए और उस अवसर पर व्याख्यान देने के अति-रिक्त २६ अप्रैल तक धर्म प्रचार किया। आगामी वर्ष के चु-नाव में पण्डित लेखराम ही प्रधान नियत हुए और फिर पंजाब की ओर लौट आए। इस ओर भी बराबर धर्म-प्रचार करते हुए २० जुलाई से ५ अगस्त तक अमृतसर में निवास किया। इस स्थान में उन्हें मिर्ज़ा गुलाम अहमद के उत्तरों की प्रतीक्षा रही।

जब मिर्ज़ा जी की ओर से कोई उत्तर न मिला और तीन मास व्यतीत हो गए (जिस अन्तर में पं० लेखराम धर्म प्रचार का कार्य करते और साथ साथ पुस्तकें लिखने का काम भी जारी रखते गए) तो आर्य मुसाफ़िर ने मिर्ज़ा जी को स्मरणार्थ एक पोस्टकार्ड भेजा जिस के उत्तर में मिर्ज़ा जी ने लिखा—"क़ादियां कोई दूर तो नहीं है, आन कर के मुलाक़ात कर जाओ। उम्मीद कि यहां पर बाहमी (परस्पर) मिलने से शरायत तै हो जावेंगी।" धर्मवीर आर्य्य मुसाफ़िर को तो केवल हाथ अटकाने को स्थान चाहिए था, वह उसी समय मिर्ज़ा जी की परीक्षा के लिए तय्यार हो गए और जिस चालबाज़ बाघ के पास जाने से बड़े २ मतवादी डरते थे निःशङ्क उस के साथ उस के ही मकान में "दस्त पञ्जा" लेने के लिए जा पहुंचे।

पण्डित लेखराम जी पूरे दो मास क़ादियां में रहे। एक ओर तो उन्होंने मिर्ज़ा जी के "इलहामी कोठे" पर जा जा कर उन का नाक में दम कर दिया। तीन बार कई भद्र पुरुषों को साथ ले कर गए और तीनों वार मिर्ज़ा जी को निरुत्तर करके लौटे। और दूसरी ओर खुले व्याख्यानों में न केवल मिर्ज़ा जी के "बुराहीन" की ही क़लई खोली, बल्कि उन की इलहामी चालबाज़ियों का भी भान्डा फोड़ दिया, जिस से मिर्ज़ा जी की आमदनी में बड़ी बाधा पड़ गई। इन्हीं दिनों क़ादियां में आर्य्य समाज भी स्थापित हो गया जिस में मिर्ज़ा जी के फांसे हुए बहुत से भोले हिन्दू भी सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य की शरण में आगए।

मिर्ज़ा गुलाम अहमद का "नाक में दम" कर और क़ादियां में एक "ज़बरदस्त" आर्य समाज स्थापन करके पण्डित लेखराम फिर अन्य स्थानों में वैदिक धर्म का प्रचार करने चले गए। बटाला आदि नगरों में धर्मोपदेश देकर ध्यान से आत्माओं को शीतल सद्धर्म रूपी जल पिलाते हुए आर्य्य पथिक अम्बाले पहुंच कर अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे थे जब उन्होंने सुना कि क़ादियां के "विष्णुदास" नामी हिन्दू को बुला कर मिर्ज़ा जी ने कहा है कि यदि वह एक साल के अन्दर मुसलमान न हो जायगा तो उन के "इलहाम के मुताबिक़" वह मर जायगा। २ दिसम्बर, १८८५ को विष्णुदास को मिर्ज़ा जी ने यह धमकी दीं और तार पहुंचते ही ४ दिसम्बर को पण्डित लेखराम बिजली की तरह क़ादियां में आ चमके। उसी समय विष्णुदास को बुला कर समझाया और खुले व्याख्यान में मिर्ज़ा जी की फिर से वह क़लई खोली गई, कि भूला भटका भाई सच मुच व्यापक विष्णु भगवान् का दास बन कर आर्य्य समाज का सभासद् बन गया और उसी दिन से मिर्ज़ा जी की कुटिल नीतियों का खण्डन करने लगा।

आर्य्य पथिक के क्रियात्मक

आर्य्य मुसाफ़िर बनने तक का

वृत्तान्त ।

सं० १८८६ ई० के आरम्भ में पण्डित लेखराम की योग्यता की आर्य्य जगत में धूम मच गई थी। "तकज़ीब बुराहीन अहमदिया" का प्रमथ भाग ठीक प्रबन्ध न होने से अभी छप नहीं सका था परन्तु उस की नक़लें हो कर दूर दूर पहुंच चुकी थी। महम्मदियों के मुक़ाबिले पर आर्य्य समाजियों ने उस पुस्तक की युक्तियों से काम लेना आरम्भ कर दिया था। जहां कहीं मुसलमानों से मुबाहिसे की छेड़ छाड़ होती वा उन का कुछ भी ज़ोर होता वहीं से पण्डित लेखराम को निमन्त्रण पहुंच जाता।

इस ईसवी सन् के मार्च मास में मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद होशियारपुर में गए। वहां आर्य समाज के प्रसिद्ध सभासद मास्टर मुरलीधर जी गवर्नमेन्ट स्कूल में ड्राइङ्ग मास्टर (आलेख्याध्यापक) थे। मास्टर जी उन आर्य्यों में से थे जो वेद विरुद्ध मतों की पोल खोलने के लिए हर समय तय्यार रहते हैं। मिर्ज़ा जी की डींगों को सुन कर मास्टर जी से रहा न गया और ११ मार्च, १८८६ की रात को उन्होंने मिर्ज़ा जी के डेरे पर पहुंच कर महम्मद साहेब के चांद के टुकड़े करने वाले चमत्कार (मोजज़े) पर लेख बद्ध आक्षेप किए। अनुमान ५ वा ६ घन्टों तक प्रश्नोत्तर होते रहे। फिर १४ मार्च १८८६

के दिन को मिर्ज़ा जी ने यह प्रतिज्ञा स्थापन की रूह (जीवात्मा) अनादि नहीं; पैदा की हुई (हादिस) है। इस प्रश्न के सुनाने और बातें बनाने में ही मिर्ज़ा जी ने दो अढ़ाई घन्टे समाप्त कर दिए और फिर पांच ६ घन्टों तक प्रश्नोत्तर होते रहे। मिर्ज़ा जी को तो इस समय रुपये बटोरने की सूझ रही थी और गम्भीर विषय की पुस्तकों की अपेक्षा बटेर बाज़ी वाली पुस्तकें अधिक बिकती हैं, इस लिए इस मुबाहिसे पर अपने ढङ्ग का निमक मिर्च मसाला चढ़ा कर मिर्ज़ा जी ने एक २६० पृष्ठों की पुस्तक "सुरमा चश्म आरिया" (अर्थात् आर्य्यों की आंखों के खोलने के लिए सुरमा) शीर्षक देकर छपवादी।

पण्डित लेखराम के दिल पर चोट तो इस पुस्तक के छपने से बहुत लगी परन्तु अभी पहली तय्यार की हुई पुस्तक ही नहीं छपी थी; इस लिए उस की छपाई में लग कर इस बात की भी प्रतीक्षा करते रहे कि मास्टर मुरलीधर जी ही उस पुस्तक का उत्तर छपवावें। किन्तु जब जुलाइ से १८८७ को "तकज़ीब बुराहीन अहमदिया" का प्रथम भाग छप कर हाथों हाथ बिक गया और आर्य पथिक को पता लगा कि मास्टर मुरली-धर जी को सरकारी नौकरी के कारण उत्तर लिख कर छपवाने का अवकाश नहीं है तो उन्होंने स्वयम् ही मिर्जा के दूसरे आक्रमण का उत्तर भी तय्यार किया, और उस का नाम रक्खा "नुसख़ाख़ब्त अहमदिया"। इस नाम करण का हेतु स्वयम् आर्यमुसाफ़िर ने इस प्रकार दिया है—" असल में यह मिर्जा " के एतराज़ मा-क़ूलियत से कोसों दूर हैं और साथ ही बेजाशेख़ी और लगवी-यत (झूठ) से तमाम किताब भरपूर है जो रास्ती नहीं बल्कि

इलहामीख़ब्त (पागलपन) मालूम होता है, पस ज़रूर हुआ कि हम वैदिक हिकमत से उन के ख़ब्त का इलाज़ करें, ताकि ख़ुदा सेहत दे; बिना बरां इस रिसाले का नाम "नुसख़ा ख़ब्त अहमदिया" रक्खा गया।" *

सं० १८८६ के प्रथम भाग में विविध स्थानों में प्रचार कर के पण्डित लेखराम फिर अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में पेशावर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर पहुंचे और अपने व्याख्यानों से अपने प्रथम स्थापन किए हुए आर्यसमाज को लाभ पहुंचाया। फिर स्थान स्थान पर व्याख्यान देने के साथ साथ ही पादरी खड़कसिंह के छः व्याख्यानों के उत्तर लिख कर भी छपवाए और बहुत सी छोटी छोटी पुस्तकें अवैदिक सिद्धान्तों के खण्डन में निकालीं।

पण्डित लेखराम के इस वर्ष के काम के विषय में १६ अक्टूबर, १८८६ की आर्य पत्रिका में एक महाशय ने इस प्रकार लिखा था :—

"लेखराम आर्य समाज लाहौर का एक कट्टर सभासद है। इस ने अपना जीवन समाज के लिये बलिदान कर दिया है। यह अरबी और फ़ारसी का बड़ा विद्वान् तथा वेत्ता है। अमृतसर आर्य समाज के गत वार्षिकोत्सव में इस ने विरोधी मतों की समीक्षा-पर एक उत्तम व्याख्यान दिया। इस के प्रयत्न से कहूटा के लोगों ने आर्यसमाज स्थापित करदी है। इस ने मियानी, पिण्डदादनखां, भेरा आदि में अत्युत्तम व्याख्यान दिए। मजीठा में लाला-

गन्डामल असिस्टेन्ट इन्जिनियर को आर्य समाज की सचाइयों पर विश्वास दिलाया और अब कश्मीर में धार्मिक शास्त्रार्थ के लिए जारहा है।"ऊपर के उद्धृत लेख से एक तो यह पता लगता है कि अपने निवास स्थान कहुटे में भी आर्य समाज की स्थापना के यही साधन बने थे। और दूसरे यह ज्ञात होता है कि इन के अर्थ-त्याग का सम्मान करना आर्य जाति ने आरम्भ कर दिया था। लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—" घर के जोगी जोगिना, आन गांव के सिद्ध।" परन्तु ज्ञात होता है कि लेखराम उन थोड़े से आदमियों में से थे जिन का अपने ग्राम में भी मान्य होता है।

सं०१८८७ के आरम्भ में पण्डित लेखराम को"आर्य्यगज़ट फीरोज़पुर" का सम्पादक बनाया गया। उस समय पञ्जाब के आर्य्यसमाजों के हाथ में अंग्रेज़ी के"आर्यपत्रिका" के अतिरिक्त अपने विचार तत्काल सर्व साधारण तक पहुंचाने का एक मात्र साधन " आर्य्य गज़ट " नामी उर्दू का साप्ताहिक ही था। पण्डित लेखराम के प्रबल हाथों में आ कर यह एक दम से चमक उठा। अनुमान दो वर्षों तक पण्डित लेखराम इस समाचार पत्र का सम्पादन करते रहे। उन दिनों के लेख पन्थाइयों के दिलों को हिला देने वाले निकला करते थे।

यद्यपि सम्पादकी बोझ उठाए हुए भी लेखराम जीआर्य्यसमाजों के जलसों पर जाते रहे और धर्म प्रचार करते रहे किन्तु एक स्थान में टिक जाने से प्रमाणों को ढूंढ कर हवाले देने और अपनी पुस्तकों को छपवाने की उन को बड़ी

सुगमता मिल गई। इन्हीं दिनों "तक़ ज़ीवबुराहीन अहमदिया" का प्रथम भाग छपा और "नुसखा खब्त अहमदिया" भी तय्यार हो गया। इसी अन्तर में दस बारह अन्य छोटी पुस्तकें तय्यार हुईं और कुछ छप भी गईं, और इन्हीं दिनों अन्य बहुत सी बड़ी पुस्तकों के लिए मसाला इकट्ठा होता रहा।

ऋषि जीवन का अन्वेषण
और
धर्म प्रचार का विस्तार।

अब तक यद्यपि नाम "आर्य मुसाफ़िर" था परन्तु यात्रा की परिधी संकुचित सी ही थी। पञ्जाब से बाहर आर्य्य पथिक ने पांव नहीं रक्खा था। तब यात्रा की परिधि में विस्तार के सामान पैदा होने लगे।

ऋषि दयानन्द का अन्त्येष्टि संस्कार हुए साढ़े चार वर्ष व्यतीत हो चुके थे। आर्य्य विभिन्न जनता की ओर से भी ऋषि के जीवन चरित्र की मांग पर मांग आरही थी। टका सीधा कर ने वालों ने साधारण लेख छाप कर ऋषि के जीवन को सन्दिग्ध बनाना भी आरम्भ कर दिया था। सांसारिक विभूतियों पर लात मार ने वाले योगी को सिद्धियों का साधक बनाना और मनुष्य पूजा की जड़ पर कुल्हाड़ी रखने वाले ईश्वर भक्त को पूज्य अवतार बतलाना आरम्भ हो गया था, और आर्य्य समाजियों के कानों पर जूं भी नहीं रेंगती थी। ऐसे समय में मुलतान आर्य्य समाज ने अपने १२ अप्रैल, सं० १८८८ के अधिवेशन में सम्मति दी कि पण्डित लेखराम को स्वामी दयानन्द के जीवन सम्बन्धी वृत्तान्त इकट्ठा करने के लिए नियत किया जाय। मुलतान आर्य्यसमाज का यह प्रस्ताव आर्य्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के १ जुलाई, सं० १८८८ के अधिवेशन में पेश हो कर स्वीकार हुआ। तब पण्डित

लेखराम जी से इस के विषय में पत्र व्यवहार शुरू हुआ और नवम्बर, १८८८ में "आर्य गज़ट" के सम्पादन को छोड़ कर पण्डित लेखराम सचमुच आर्य्य मुसाफ़िर बन गए ।

इस समय तक यद्यपि पण्डित लेखराम का नाम मैं सुन चुका था और अमृतसर के व्याख्यान का भी आनन्द ले चुका था, परन्तु अधिक परिचय मेरा आर्य्य पथिक के साथ नहीं हुआ था। नवम्बर के मध्य में पण्डित लेखराम ऋषि जीवन सम्बन्धी घटनाओं की वृत्तान्त जमा कर ने निकले और लाहौर से कार्य्य आरम्भ किया। इस वर्ष के लाहौर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव में पण्डित लेखराम ने २८ नवम्बर को, धर्म चर्चा के समय, शङ्का समाधान में बड़ा प्रसिद्ध भाग लिया, जिस के कारण उपदेशकों में उन का पद ऊंचा समझा जाने लगा। उसके पश्चात् १२ दिसम्बर की शाम को रेल से पण्डित लेखराम जी जालन्धर नगर में पधारे। १३ को प्रातः काल मेरे साथ पण्डित जी का वार्तालाप होता रहा, जिस से हम दोनों एक दूसरे के अधिक समीप हुए। उसी सायंकाल पण्डित जी का "वेद ईश्वरीय ज्ञान" विषय पर, आर्य्य मन्दिर जालन्धर शहर में, व्याख्यान हुआ। मेरी "दैनिक वृत्तान्त पत्रिका" में लिखा है, फ़िर पण्डित लेखराम का व्याख्यान सुनने गया। जन संख्या ५०० थी जिस में सुशिक्षित सभ्य अधिक सम्मिलित थे। पण्डित जी की स्मरण शक्ति आश्चर्य मय है।

जालन्धर नगर से चल कर शायद मार्ग में एक दो स्थानों पर ठहरते हुए पण्डित लेखराम सीधे मथुरा पहुंचे।

वहां सारा दिसम्बर मास वह भी स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी के शिष्य-गण पण्डित युगलकिशोर, पण्डित दामोदर चौबे पण्डित हरिकृष्णादि से ऋषि दयानन्द और उन के गुरु सम्बन्धी वृत्तान्त पूछते और लिखते रहे।

सं० १८८६ के प्रथम भाग में पण्डित लेखराम जी बराबर संयुक्त-प्रान्त में ही काम करते रहे। जहां ऋषि जीवन सम्बन्धी अन्वेषण के लिए पहुंचते वहां व्याख्यान भी अवश्य देते, और यह व्याख्यान वेदमत मण्डन तथा महम्मदी मत खन्डन में ही होते। मथुरादि से ऋषि जीवन का मसाला इकट्ठा करते हुए आर्य्य पथिक अजमेर पहुंचे। उस समय अजमेर नगर में बड़ा भारी आत्मिक भौंचाल आया हुआ था। आर्य्य समाज की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति देख कर पौराणिकों, ईसाइयों, मुसलमानों और जीव रक्षा का दम मारने वाले जैनियों तक ने विरोध का झन्डा खड़ा कर दिया था। इस का विशेष कारण यह भी था कि उन्हीं दिनों पण्डित लेखराम की "तकज़ीब" और "नुसख़ा ख़ब्त" पढ़ कर अजमेर का एक अब्दुलरहमान नामी व्यक्ति महम्मदी मत को तिलाञ्जली देकर वैदिक धर्म की शरण में आया था। आर्य्य समाज की ओर से इसे सोमदत्त का सौम्य नाम दिया गया था। इस से मुसलमान बहुत ही दुखित थे और इन्होंने ही पौराणिक मण्डल को उत्तेजना देकर पहले उन का उत्सव रचवाया। आर्य्य बेचारे छेड़ छाड़ से किनारा किए बैठे थे कि पौराणिकों के दूत उन के घरों में पहुंच २ कर ललकारने लगे। वृद्धों ने

तो इस की कुछ परवा न की किन्तु १० वा १२ युवकों से न सहन हो सका और वे प्रश्नोत्तर के लिए पौराणिकों के निमन्त्रणानुसार पहुंच ही गए। जब प्रश्नोत्तर का समय आया और एक आर्य्य युवक ने पहला ही प्रश्न किया तो पौराणिक दल घबरा गया और कुछ बदमाशों ने शोर मचा कर, कि आर्य्यों ने एक मूर्त्ति को खन्डित कर दिया है, आर्य्यों पर लात, घूंसा और लाठी से आक्रमण कर दिया। इस समय सोमदत्त ने बड़ी बहादुरी दिखाई और पटे के हाथ से भीड़ को हटाता हुआ आर्य्य युवकों को बचा लाया।

जब इधर कुछ पेश न गई तो मुसलमानों की बारी आई। उन्होंने न केवल आर्य्य समाज के विरुद्ध खुले व्याख्यानों में ही आक्रमण शुरु किए बल्कि सहस्रों ने इकट्ठे हो कर यह धमकी दी कि यदि कोई आर्य्य बोला तो जान से मारा जायगा। "रहनुमा" नामी एक मासिक पत्र भी मुसलमानों ने निकाला था।

यह समय था जब पण्डित लेखराम अजमेर नगर में पधारे। पण्डित लेखराम के पहुंचने पर आर्य्य पुरुषों को अपनी चिन्ता तो भूल गई, उल्टी इन की रक्षा की चिन्ता जाग उठी। विचार किया गया कि पण्डित जी की रक्षा के लिए चार पहरे वाले उन के पास रहें। जब धर्म वीर ने इस घुस पुस को सुना तो झिड़क कर कहा—"मुझे कोई ज़रूरत नहीं" तुम लोग बड़े डरपोक हैं। कोई क्या कर सक्ता है। ?" दूसरे दिन ही मुसलमानों की ओर से आदमी आने लगे जिन से पंडित जी

वराबर बात चीत करते रहे। व्याख्यानों की धूम मच गई। एक मौलवी ने पंडित जी से हिन्दी पढ़ने की इच्छा प्रकट की। आर्य्य समाजियों के गुप्त रीति से मना करने पर उन को भिड़क दिया और मौलवी को पढ़ाने लग गए। अन्त को वहां के आर्य्यों से एक नया मासिक "वैदिक विजय पत्र" निकलवा कर उस की सहायता अपने लेखों से करते रहे। जो "जिहाद" नामी प्रसिद्ध पुस्तक पंडित लेखराम की मिलती है वह पहले इसी वैदिक विजय पत्र में क्रमशः निकली थी।

इन्हीं दिनों अजमेर से बाहर भी राजपूताने के कुछ स्थानों में ऋषि जीवन सम्बन्धी अन्वेषण करते हुए नसीराबाद छावनी में पहुंचे थे। वहां महम्मदियों से शास्त्रार्थ छिड़ गया। शहर कोतवाल शराबी कायस्थ था जिस ने शास्त्रार्थ को मध्य में ही बन्द कर दिया। उसी रात शराबी कोतवाल को लक़वा मार गया और दूसरे दिन वह मर गया। सर्व साधारण में प्रसिद्ध हो गया कि उस दुष्ट को पंडित जी का शास्त्रार्थ बन्द करने का फल मिला। अन्य उपदेशक शायद सर्व-साधारण के इस मिथ्या विश्वास से अनुचित लाभ उठाते किन्तु आर्य्य पथिक ने लोगों के इस भ्रम को दूर करने का बहुत ही प्रयत्न किया।

इस के पश्चात् पता लगता है कि पंडित जी छुट्टी ले कर अपने गृह पर आए। थोड़े दिनों ही घर पर ठहर कर भादों के आरम्भ में ही फिर अपने काम पर चले गए। २४ अगस्त के सद्धर्म्म-प्रचारक में छपा था—"पंडित लेखराम जी ने

सवातह उमरी (जीवन चरित्र) का काम फिर शुरु कर दिया है। चन्दरोज़ हुए वह मेरठ की तरफ़ रवाना हुए। अब पहले मुमालिक मगरबी व शिमाली (पश्चिमोत्तर देश) में दौरा लगाएंगे।"

मालूम होता है कि मेरठ में आर्य्य पथिक बहुत दिनों तक ठहरे, क्योंकि "किनवेद बेवगान" नामी पुस्तक मेरठ के रामचन्द्र वैश्य से छपवा कर माघ १९४६ के आरम्भ में ही सद्धर्म प्रचारक के कार्यालय में पहुंच गई थी। उस लघु पुस्तक की समालोचना मेरी लिखी हुई १ फरवरी, १८९० के सद्धर्म प्रचारक में छपी है। इस पुस्तक में शास्त्रीय प्रमाणों से भी विधवा विवाह का ही समर्थ न किया गया था। इसी लिए मुझे पहले पहल उस समय यह संदेह हुआ था कि आर्य पथिक नियोग को आपत् काल का धर्म कदाचित नहीं मानते हैं। समालोचना करते हुए मैंने लिखा था—"तर्ज़ेतहरीर से वाज़ह होता है कि पण्डित साहेब नियोग को वेदानुकूल नहीं मानते, बल्कि पुनर्विवाह, हरबेवा का जाइज़ समझते हैं। हमारी राय में वेहतर हो अगर पण्डित साहेब इस बहस को छेड़ें, ताकि इस अमर मुतनाज़िया का कुछ फ़ैसला हो और आर्य्य समाज एक ख़ास नियम का पाबन्द हो जावे।" इस विषय को इसी स्थान में समाप्त करने के लिए इतना लिखने की आवश्यकता है कि सम्वत् १९५०वि० तक पंडित लेखराम नियोग के विषय में कुछ सन्दिग्ध सी सम्मति रखते थे और प्रायः प्रसिद्ध आर्य्य समाजियों के साथ इस विषय में बात चीत करते रहते थे। जब सम्वत् १९५१ में मेरे साथ अधिक परिचय हुआ और खुली बात

चीत होने लगी उस समय मेरे साथ विचार करने पर ही उन्हों ने इस विषय में अपनी सम्मति बदल ली थी और इसी लिए उन्हों ने पादरी टी. विलियम्स और पंडित शिवनारायण अग्निहोत्री (वर्तमान देव समाजी गुरु) की शङ्काओं का समाधान करने के लिए, "मसलानियोग" नामी ट्रैक्ट लिखा जो "कुलियात आर्य्य मुसाफ़िर" के २७९ पृष्ठ से आरम्भ होता है। मुझे भली प्रकार विदित है कि अपनी मृत्यु से एक वर्ष पहले वह द्विजों के लिए नियोग का ही विधान ठीक समझते थे, परन्तु शूद्रों के लिए पुनर्विवाह को ही शास्त्र सम्मत मानते थे। मेरठ से चल कर आर्य पथिक कोल (अलीगढ़) में पहुंचे । उपनगर बरौठा में उन्हीं दिनों आर्य समाज स्थापित हुआ था, वहां १९ जनवरी १८९० को व्याख्यान दिया जिस में प्रायः राजपूत अधिक सम्मिलित हुए और आर्य्य समाज को २० नए सभासद्र मिले। फिर २१ और २२ जनवरी को ख़ास अलीगढ़ में दो व्याख्यान दे कर आगे चल दिए।

इस के पश्चात् आर्य्य पथिक संयुक्त प्रान्त और पंजाब के नगरों में सद्धर्म का प्रचार करते हुए ऋषि दयानन्द के जीवन सम्बन्धी घटनाएं लिखते रहे, और भ्रमण करते हुए बीमार होकर अगस्त, सं० १८९० के मध्य भाग में जालन्धर पहुंचे। यहां पहुंच कर उन को ज्वर बड़े ज़ोर से चढ़ा। लाला देवराज के शान्ति सरोवर पर एकान्त में उन का डेरा कराया गया।

एक दिन कचहरी से ३ बजे ही लौट कर मैं पण्डित लेखराम जी को देखने चला गया। पण्डित जी चारपाई पर बैठे

हांप रहे थे और आंखों से ज्वर १०५ दर्जे से बढ़ा हुआ मालूम होता था। मैंने नमस्ते की, उत्तर कुछ न मिला। मैंने पीठ के पीछे हाथ डाल कर लेटाना चाहा; मेरी बाँह ज़ोर से झटक दी और क्रोध में भरे हुए बोले—"बस साहेब! मैं यहां नहीं ठहरूंगा। यह आर्य्य गृह नहीं है।" मैंने पूछा—"पण्डित जी क्या हुआ?" क्रोध से रुक रुक कर बोले—"पहले लाला देवराज को बुलाओ। मैं पीठ पीछे बात करना पाप समझता हूं" लाला देवराज जी के लिए आदमी दौड़ाया गया। वह शीघ्र ही पहुंच गए। धर्म वीर के होंठ फड़कने लगे और बोले—"आप काहे के आर्य हो। इस तरह "ओ३म्" भगवान् की हतक करते हो।" इतने में मैंने वहां नियत किए हुए भृत्यु को अलग लेजा कर पूछा तो पता लगा कि मामला क्या है। पण्डित लेखराम ज्वर से पीड़ित चारपाई पर पड़े "ओ३म्" "ओ३म्" बोल रहे थे कि एक जन्म के ब्राह्मण का लड़का वहां पहुंचा। चारपाइ के सामने कुछ दूर गमले पड़े थे। तीन चार गमलों के ऊपर "ओ३म्" शब्द लिखा हुआ था। ब्राह्मण के लड़के ने जूता उतार कर कुछ गाली बक, गमले पर लिखे "ओ३म्" पर जूते लगाने शुरु किए, पण्डित जी से सहन न हुआ, दुष्ट की ओर लपके। लड़का भागा, पीछे स्वयम् भी भागे। भला नट खट लड़के को ज्वर से पीड़ित लेखराम कैसे पकड़ सकते। जब वह आंखों से ओझल हो गया, तो हांपते हुए लौटे और चार पाई पर बैठ गए।

मैंने लौट कर पण्डित जी को शान्त करना चाहा और कहा—"पण्डित जी, भला देवराज जी का क्या अपराध है।

उस शैतान को क्या इन्हों ने बुलाया था ! ” उत्तर मिला— “क्यों नहीं गमले को ऊंची जगह पर रक्खा जहां लड़के का हाथ न पहुंच सक्ता। ईश्वर जानता है मैं यहां नहीं ठहरूंगा।”

देवराज जी के नम्र उत्तर पर और भी बिगड़ने लगे तब मैंने उन को भेज कर पण्डित जी को लेटा दिया और मुट्ठी चापी कर के सुलाया यह घटना जहां आर्य्य पथिक की निर्बलता को प्रकट करती है, वहां साथ ही यह भी जतलाती है कि अपने मन्त्रों के लिए उन के हृदय में कैसी भक्ति थी।

दो सप्ताह तक पण्डित लेखराम ज्वर से पीड़ित रहे। ज्वर उतर ते ही निर्बलता को सर्वथा भुला कर उन्हों ने २६ अगस्त १८७० के दिन पहला व्याख्यान दिया। फिर ३१ अगस्त को दूसरा व्याख्यान सद्धर्म्म विषय पर स्थानीय आर्य्य समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में दिया। उसी समय नकोदर से समाचार आया कि वहां का गिरदावर क़ानूंगो, जो कुछ काल से मुहम्मदी हो गया था, अपने संशय निवृत्त करना चाहता है। दूसरे दिन ही पण्डित जी निर्बलता की परवाह न करते हुए इक्के की सवारी से, बहुत से आर्य्य भाइयों सहित नकोदर में पहुंचे। चार दिन बराबर धूमधाम से व्याख्यान होते रहे। एक साधू और एक पौराणिक पंडित के साथ मूर्ति पूजा विषय पर शास्त्रार्थ भी होता रहा, जिस में दोनों निरुत्तर हो गए। अन्तिम दिवस २५ सभासद् बना कर आर्य्य समाज स्थापित किया।

जालन्धर से लाहौर पहुंच कर आर्य्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान को मिले और फिर सीधे सहारनपुर पहुंचे। वहां से १२ सितम्बर को कानपुर चल दिए। २० सितम्बर तक बराबर कानपुर में ऋषि जीवन सम्बन्धी अन्वेषण करते रहे और वहां बड़ी जन, उपस्थिति में कई व्याख्यान दिए। सृष्टि उत्पत्ति विषय पर जो अन्तिम व्याख्यान था उस की बहुत ही प्रशंसा हुई।

कानपुर से पंडित लेखराम सीधे प्रयाग पहुंचे। प्रयाग में ही उन दिनों श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज का स्थापन किया हुआ वैदिक यन्त्रालय भी था और पंडित भीमसेन और पंडित ज्वालादत्त भी उस में काम करते थे। यहां पंडित लेखराम एक मास तक पत्र व्यवहार देखते रहे। इसी समय कुछ प्रूफ देखते हुए आर्य्य पथिक ने पंडितों की पोपलीला का पता लगा, वेदभाष्य का एक छपा हुआ अङ्क जलवा दिया था और उस का संशोधन करा कर फिर से छपवाया था। अपने पाठकों के समझाने के लिए यह लिखना आवश्यक है कि वेदभाष्य का संस्कृत भाग ऋषि दयानन्द का अपना लिखवाया हुआ है, परन्तु भाषार्थ सब पंडितों का किया हुआ है। जिन पंडितों ने मूल संस्कृत भाष्य में भी हस्तात्तेप करने से सङ्कोच नहीं किया था वे भला भाषार्थ में कब चूकने वाले थे जहां सारा काम ही उन के हाथों में था। यहां पंडित लेखराम के हलचल डालने का परिणाम था कि वेदभाष्य के अङ्कों के अवलोकन का भार कुछ प्रसिद्ध आर्य्य पुरुषों पर डाला गया था।

मिर्ज़ापुर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव का हाल सुन कर पंडित लेखराम २४ अक्टूबर, १८६० ई० को उधर चल दिए। पहले दिन हवन के पश्चात् उसी विषय पर पंडित लेखराम का युक्ति युक्त तथा सारगर्भित व्याख्यान हुआ। मेरे संवाद दाता लिखते हैं कि ऐसा ज़बरदस्त व्यख्यान मिर्ज़ापुर निवासियों ने पहले कभी नहीं सुना था। उसी दिन शाम को धर्म विषय पर व्याख्यान हुआ। दूसरे दिन आर्य्य समाज के दश नियमों पर अपना प्रसिद्ध व्याख्यान दिया जिस को सुन कर बालवृद्ध सभी आर्य्य समाज के गुण गाने लगे।

आर्य्य समाज के सभासद् एक कलवार थे। पंडित जी ने उन्हें समझाया कि जब वैश्य का काम करते हो तो यज्ञोपवीत से क्यों वंचित हो। सभासद् ने उत्तर दिया—"महाराज! मेरा यज्ञोपवीत यहां कौन करायगा?" वहां उत्तर में क्या देर थी "मैं कराऊंगा; देखूं कौन सा आर्य्य समाजी पंडित है जो सम्मिलित न होगा।" बस फिर क्या था। यज्ञोपवीत का समय नियत किया गया। न केवल नगर के प्रसिद्ध लोग ही सम्मिलित हुए प्रत्युत पण्डित घनश्याम और रामप्रकाशादि जन्म के ब्राह्मण पण्डितों ने स्वयम् संस्कार कराया और धर्मवीर लेखराम के धैर्य देने पर बिरादरी आदि की धमकियों की कुछ भी परवाह न की।

मिर्ज़ापुर के एक वकील बड़े कट्टर मौलवी थे और साथ ही शहर के गुण्डों के सरदार। मिर्ज़ापुर अपने गुण्डों के लिए प्रसिद्ध है। काशी तो गुण्डों के लिए जगत् विख्यात है, किन्तु

मिर्ज़ापुर का लोहा उस ने भी माना हुआ है। काशी की कजरी का एक पद है:—

"कासी जी में सोंटा चलेगा मिरज़ापुर तरवार"।

मिर्ज़ापुर के गुण्डों के सर्दार मौलवी वकील एक दिन पण्डित लेखराम के साथ मज़हबी छेड़ छाड़ के लिए पहुंचे। भला आर्य्य मुसाफ़िर के सामने ठहरना कुछ हंसी ठट्ठा था; थोड़ी देर में ही निरुत्तर हो कर चले गए। दूसरे दिन मुबाहसे की तय्यारी कर के आए। आर्य्यसमाज के प्रधानादि ने उन की नियत बद देख कर अस्वीकार किया, किन्तु धर्मवीर ने निर्भय हो कर शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। शहर में हुल्लड़ मच गया। आर्य्य भाइयों ने पण्डित जी को बाहर जाने से मना किया किन्तु उन सब ने सायंकाल को आश्चर्य के साथ देखा कि धर्मवीर अकेले डन्डा हाथ में लिए, पगड़ी का शमला छोड़े, घूमने जारहे हैं।

मिर्ज़ापुर से पण्डित लेखराम काशी को गए और मालूम होता है कि दो मास तक वहां ही आन्दोलन करते रहे। काशी के पंडितों के यहां आर्य्य पथिक ने बड़े चक्कर लगाए और पौराणिक पंडितों के विरोध का बराबर हाज़िर जवाबी से मुक़ाबिला किया।

सं० १८६१ ई० के जनवरी मास में पंडित लेखराम काशी से चल दिए। दो दिन रास्ते में डूमरांव राज में निवास कर के १७ जनवरी, १८६१ के दिन दानापुर पहुंचे।

१७ से १२ फ़र्वरी तक दानापुर, बांकीपुर और पटना में ही काम किया। इन स्थानों में व्याख्यान भी हुए किन्तु बड़ी मनोरञ्जक वह वृत्तान्त पत्रिका है जो डाक्टर मुनीलाल शाह, पटना आर्य्य समाज के सामयिक प्रधान, ने मेरे पास भेजी थी। यतः यह पत्रिका बहुत समाचार पत्रों तथा धर्म वीर आर्य्य पथिक के जीवन वृत्तान्तों में छप चुकी है और यतः मुझे भी आगे चल कर इस में लिखित विषयों पर अधिक प्रकाश डालना है, अतएव उस वृत्तान्त पत्रिका को डाक्टर शाह के शब्दों में ही मुद्रित कर देता हूं। डाक्टर शाह लिखते हैं:—

"जिन दिनों श्रीमान् पण्डित लेखराम जी श्री १०८ श्री मद्दयानन्द सरस्वती जी महाराज का जीवन वृत्तान्त संग्रह करते हुए दानापुर से बांकीपुर पधारे थे और इस दीन पुरुष के निज गृह पर आ बिराजे, उस समय यह पुरुष मेडिकल क्लास का विद्यार्थी और बांकीपुर आर्य्य समाज (बादशाही गंज) का मंत्री था श्रीमान् पण्डित जी बांकीपुर में लग भग ६ दिन के ठहरे, इस बीच उन के मकान से एक तड़ित समाचार समाज के नाम अनायास पहुंचा तार द्वारा समाज से जिज्ञासा की गई थी कि पण्डित जी जीवित हैं वा नहीं? किन्हीं दुर्जन यवन ने खबर भेजी थी कि पण्डित लेखराम मारे गये!!

इस अपूर्व घटना का कारण मैंने पण्डित जी से पूछा पण्डित जी ने उत्तर में यही कहा कि प्रायः यवन लोग हमारे मकान पर ऐसा ही अमङ्गल समाचार भेजा करते हैं अस्तु,

तार का जवाब श्रीमान् पण्डित जी के जीवित रहने का उसी क्षण में भेजा गया परन्तु मुझ को उसी दिन से यवनों के कुटिल बर्त्ताव का अशुभ ख़याल खटकने लगा दूसरे दिन, पण्डित जी ने मुझ को अधिक चिन्तित और उदासीन पा कर पूछा कि "आप आज क्यों मलीन देख पड़ते हैं ? उत्तर में मैंने यही निवेदन किया कि महाराज ! ऐसा न हो कि किसी समय में आप के ऊपर यवनों का अघात पहुंच जावे ! आप को उचित है कि इस असभ्य मूर्ख क़ौम के लोगों से सोच विचार के बर्त्ताव रखना" पण्डित जी बिहस कर के कह ने लगे कि मंत्री जी ! मृत्यु एक दिन अवश्य ही; है किन्तु सच्चे धर्म्म के लिये शहीद होने के बराबर कोई दूसरी मृत्यु नहीं—तवारीख पढ़ो और देखो कि इस ज़मीन के पर्दे पर जिन २ लोगों ने अपने धर्म्म के लिये गला दिया है, उस कर्म्म का कैसा प्रभावशाली उत्तम परिणाम निकला है—बस, इन यवनों के विषय में अधिक उद्विग्न होने की कोई आवश्यक्ता नहीं—ऐसे तो ये लोग मुझ को गालियां देते, पत्थर फेंकते, हमारी तसनीफ़ की हुई किताबें जलवाते, जगह-ब-जगह यवन मत के पोल, इन दो किताबों 'तक-ज़ीब-बुरा-हीन अहम्मदिया वा नुसख़े-खब्त-अहम्मदिया' के द्वारा खुल जाने से अभियोग खड़ा करवाते और नाना प्रकार के कुटिल बर्त्ताव बराबर उत्पन्न करने की कुचेष्टा किया करते हैं—परन्तु मैं इन पर कुछ ध्यान नहीं देता—हम लोगों को उचित है कि अपना कर्त्तव्य कर्म पालन कर ने में किसी प्रकार की त्रुटि न दिखलावें—मैंने पुनः पूछा पंडित जी ! सत्यार्थ-प्रकाश का

फ़ारसी अनुवाद क्यों नहीं करते ? उत्तर में पंडित जी ने यह कहा कि मंत्री जी ! सोच तो रहा हूं कि स्वामी जी महाराज का जीवन चरित्र समाप्त कर सत्यार्थ-प्रकाश का फ़ारसी तर्जुमा कर यवन लोगों के मुख्य प्रदेशों की ओर प्रस्थान करूं-मैंने पुनः पूछा कि मुख्य प्रदेशों से आप का क्या अभिप्राय है ? पंडित जी ने जवाब दिया कि अफ़गानिस्तान, परशिया, अरेबिया, तुर्किस्तानादि मिश्र देशों में भ्रमण कर वैदिक-धर्म्म का प्रचार करना ही हमारा मुख्य अभिप्राय है। मैंने पूछा क्यों पंडित जी ! बिना प्रतिनिधि की आज्ञा के आप कैसे जायंगे ? मंत्री जी ! मैं प्रतिनिधि के आधीन हो कर जाने की इच्छा नहीं करता, बरन् स्वतंत्रता के साथ उपदेश करना चाहता हूं ?—पंडित जी ! इन यवन देशों में आप बिना प्रतिनिधि की सहायता के अपनी आजीविका किस प्रकार निर्वाह करेंगे ? मंत्री जी ! मैं चिकित्सा द्वारा अपना जीवन वृत्ति धारण करूंगा—पंडित जी ! क्या आप ने इस में कुछ परिश्रम किया है ? मंत्री जी ! कुछ तो किया है और शनैः शनैः कर रहा हूं—देखो हमारे पास बहुत से मुफ़ीद नुसखें जमा हुए हैं—जब मैं एक स्थान से दूसरे स्थान जाता हूं तो चिकित्सा शास्त्र के जानने वालों से प्रायः मुलाक़ात किया करता हूं और जो २ मुफ़ीद नुसखें उन के पास होते हैं चन्द उन में से नोट कर लेता हूं—इसी अवसर में पंडित जी ने नोट बुक निकाल कर मुझ को भी (प्रार्थना करने पर) दो चार नुसखें धातुआदि के विषय में लिखवा दिये—

पण्डित जी ! कल दिन एक सनातन पौराणिक के यहां जलसा है, इस में अनेक पण्डित गण दूर २ देश से आये हैं उन्हों ने मुझ को सूचना भेजी है कि आप भी अपने पण्डित के सहित आइये सो इस विषय में आप की क्या सम्मति है ? श्रीमान् पण्डित जी ने उत्तर दिया कि अवश्य चलना चाहिये— तदनुसार हम लोग दूसरे दिन पौराणिकों के जलसे में शरीक हुए पण्डित जी का एक व्याख्यान अवतारादि कल्पित विषय के खंडन पर ऐसा प्रभाव शाली और उत्तमता से हुआ कि पौराणिकों को चकाचौंध लग गया, उन में से कोई निरक्षर लण्ठ कषाय वस्त्रधारी स्वामी जी के विरुद्ध में अण्ड बण्ड बकने लगा, पर पण्डित जी ने थोड़े ही समय में उस का मुंह बन्द कर दिया—तत्पश्चात् सन्ध्या को हम लोग अपने स्थान पर लौट आए।

प्रतिदिन स्वर्गवासी पंडित लेखराम जी से धर्म्म सम्बन्धि विषयों के ऊपर बात चीत होते होते एक दिन उन्हों ने पूछा कि मंत्री जी ! ४० चालिस पारे का कुरान आपने देखा है वा नहीं ? मैंने उत्तर दिया नहीं। पंडित जी कहने लगे कि मैं इस पुस्तक की खोज में बहुत दिनों से हूं पर अद्यावधि प्राप्त नहीं भया। मैंने उन से निवेदन किया कि इस स्थान पर एक वृहत् कुतुबख़ाना (Library) मौलवी ख़ुदाबक्सखां बहादुर की है इस कुतुबख़ाने के बराबर कोई दूसरी इधर उधर नहीं है, प्रायः पुस्तकें उन के नबियों के और अरब मुल्क के प्राचीन मौलानों के तसनीफ़ किये हुए हैं सो इस को आप चल के

मुलाहिज़ा कीजिये; शायद वह किताब मिल जाय। पण्डित जी समाचार सुनते ही बड़ा प्रसन्नता और हर्ष पूर्वक उसी समय मुझ को लेकर कुतुबख़ाने को आये और किताबें देखना आरम्भ किया, ईश्वर की कृपा से वही ४० पारे का कुरान जिस की खोज में इतने दिनों से इच्छुक हो रहे थे, प्राप्त भया; पंडित जी ने प्रायः मुख्य मुख्य विषयों को पिछले १० पारे में से नोट कर लिया और भी बहुत सी बातें अपनी डेली डायरी (रोज़-नामचे) में दर्ज कीं। इस कार्य्यवाही को देख के चन्द यवन लोगों ने जो वहां बैठे थे पंडित जी का नाम व तारीफ़ मुझ से पूछा, पर मैंने किसी कारण वश नाम नहीं बतलाया। इसी क्षण में कुतुब ख़ाने के मालिक भी पहुंच गये। उन्हों ने अपने मौलवियों से सुना कि अमुक पण्डित ने कुरान (४० पारे) से बहुत से विषय नोट किये। मालिक कुतुब खाना उस ४० पारे के कुरान के विषय में यों कहने लगे कि यह किताब बड़े कठिनता से प्राप्त भया है, अर्थात् जब वह पेशावर गये थे तब एक प्रतिष्ठित मौलवी ने कई सहस्र रुपये लेकर बेचा था, उस मौलवी ने मालिक कुतुबखाने से यों बयान किया था कि यह कुरान (Persia) परशिया (ईरान) के बादशाह के दिवान ने अफ़गानिस्तान (काबुल) में भेजा था, उस आदमी से मुझ को प्राप्त भया। अस्तु, पण्डित जी से और भी बातें होने लगी, पण्डित जी कार्य्य समाप्त होने पर अधिक न ठहरे और हम लोग अपने डेरे पर बात चीत करते हुए लौट आये।

दूसरे दिन हम लोग खड़गविलास नामक यन्त्रालय

में पहुंचे। वहां का समाचार मिला था कि उस प्रेस में "कवि बचन सुधा" जिस को बाबू हरिश्चन्द्र काशी से प्रकाशित करते थे पूरा २ इस पत्र का File है ? सुतरां पण्डित जी ने (File) को मांगा और उन लोगों ने भी कृपया दे दिया। पण्डित जी को जो कुछ नोट करना था सो सब लिख लिये; इस पत्र में स्वामी जी के विषय में अनेक उत्तम २ विषय प्रकाशित हुए थे, हुगली (Hoogly) शास्त्रार्थ इसी पत्र में प्रथम २ ज्यों का त्यों छपा था।

स्वामी जी का भ्रमण वृत्तान्त जब पण्डित जी पटने का संग्रह कर चुके, तब कलकत्ता प्रस्थान करने की तय्यारी की। जब तक पण्डित जी यहां ठहरे तब तक सभासद्दों को पूर्णरूप से उत्साह देते रहे। आप के कई व्याख्यान पवलिक में हुए जिस का असर बहुत ही लाभ कारी भया। पण्डित जी कोई बात जब ऐसी सुनते थे जो उन के आत्मा को प्रिय न होता था तो उस पुरुष से बहुत शीघ्र रंज हो जाते थे परन्तु साथ ही यह रंज बहुत क्षणिक रहता था। कलकत्ता में मैं बराबर पण्डित जी के साथ रहा और बहुत सी शिक्षा उन से प्राप्त की—आप को तवारीख़ का बड़ा शौक़ था, अतएव बहुत से विषय का विस्तृत ज्ञान आप हासिल किये हुए थे"—

१३ फरवरी सं० १८६१ के दिन आर्य पथिक बांकीपुर से हौड़ा जाने वाली गाड़ी में सवार हुए और १४ फरवरी को कलकत्ते पहुंच कर आर्य्यावर्त्त समाचार पत्र के कार्यालय में डेरा किया।

इसी वर्ष १२ अप्रैल को हरद्वार के कुम्भ का स्नान था और एक मास पहले से ही बड़ा भारी मेला लगने वाला था। ऋषि दयानन्द के परलोकगमन के पश्चात् यह पहला ही कुम्भ था, और मैंने इस अवसर पर प्रचार के लिए बड़ा बल दिया था। मेरे लेखों को कलकत्ते में पढ़ कर आर्य पथिक को भी बहुत जोश आया। उन्हों ने ७ मार्च, १८९१ के आर्य्या-वर्त्त में मेरे लेख के साथ सर्वथा सहमत हो कर, मुझे आज्ञा दी कि उन के हिसाब में से ५) रुपया आर्य समाज जालन्धर के कोषाध्यक्ष से लेकर कुम्भ प्रचार फन्ड में दाख़िल करदूं। पण्डित लेखराम के लेख पर पंजाब और संयुक्त-प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभाएं भी जाग उठीं और मुझे आज्ञा हुई कि प्रचार का प्रबन्ध करने के लिए हरद्वार चला जाऊं। मेरे हरद्वार पहुंचने के तीन दिनों के पश्चात् ही पण्डित लेखराम जी भी कलकत्ते से ५०) चन्दा कर के साथ लिए पहुंच गए थे और जब कार्यवशात् मुझे प्रचार के बीच में से ही जालन्धर लौटना पड़ा तो मेरे निवेदन पर पंडित जी ने राजकुमार जन्मेजय को प्रबन्ध के काम में बड़ी सहायता दी थी। पंडित जी इस से पहले मुझे साधारण परिचित आदमियों में समझा करते थे परन्तु कुम्भ प्रचार के लिए मेरी अपीलों को पढ़ कर वह मुझ से अधिक प्रेम करने लग गए थे। वह ऋषि दयानन्द के बड़े भक्त थे और ऋषि के चरणों में मेरी भक्ति को देख कर ही आर्य्य पथिक मेरे अधिकतः समीप हो गए थे।

कुम्भ प्रचार की समाप्ति पर पं० लेखराम मेरे पास जाल-

न्धर आए और आर्य प्रतिनिधि सभा की आज्ञानुसार कुम्भ प्रचार का हाल एक उर्दू ट्रैक्ट की शकल में छपवाया।

लाहौर में पहुंचते ही समाचार मिला कि सिन्ध हैदराबाद में आर्य जाति के कुछ भूषण महम्मदी तथा ईसाई मतों की ओर झुक रहे हैं। इस पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान की आज्ञा पा कर पंडित लेखराम ने उधर को प्रस्थान किया।

सक्खर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए पंडित लेखराम बैशाख १६४८ के अन्त में चले गए थे। स्वामी (वर्त्तमान पंडित) पूर्णानन्द जी भी "द्वाबा गुरुदास-पुर उपदेशक मंडली" की ओर से उक्त उत्सव में सम्मिलित थे। वहां विस्तृत समाचार मिला कि महम्मदी मत का (सिन्ध) हैदराबाद में ज़ोर है, और साथ ही यह भी पता लगा कि एक आमिल रईस अपने दो लड़कों सहित महम्मदी मत स्वीकार करने को तय्यार हैं। इस से बढ़ कर यह प्रसिद्ध था कि कई युवक ईसाई मत की ओर अधिक झुक रहे हैं।

आर्य्य पथिक यह समाचार सुन कर चुपके से कैसे लौट सक्ते थे; श्री पूर्णानन्द जी सिन्धी भाषा जानते थे, इस लिए उन्हें साथ ले कर पंडित लेखराम ने हैदराबाद का रास्ता लिया। ज्येष्ठ, १६४८ के आरम्भ में ही ईसाई और महम्मदी मतों के खन्डन की हैदराबाद में धूम मच गई। ईसाई मत से युवकों को हिलाने के लिए आर्य पथिक ने उसी स्थान में एक लघु पुस्तक तय्यार किया जिस का शीर्षक रक्खा—"क्या आदम और हव्वा हमारे पहले वालदैन (माता पिता) थे ?"

इस लेख में युक्ति तथा प्रमाण द्वारा सिद्ध किया कि एक मा बाप की सन्तान सारी मनुष्य सृष्टि सिद्ध नहीं होती। इसी प्रबल लेख का सार अपने व्याख्यान में दे कर पंडित लेखराम ने ८ वा १० आर्य्य जाति के युवकों को ईसाई मत के गढ़े से गिरते २ खींच लिया।

सिन्धी रईस, जो महम्मदी मत की ओर झुक रहे थे, दीवान सूर्यमल जी थे। आर्य्य पथिक के हैदराबाद पहुंचने पर वह स्वयम् तो अपने इलाक़े अलीपुर की ओर चले गए, किन्तु उन के दोनों पुत्रों को पण्डित लेखराम जी ने जा घेरा। मेरे पास उस समय का सारा पत्र व्यवहार मौजूद है जिस से पंडित जी की हिम्मत और उन के धर्म रक्षा में उत्साह का पता लगता है। हैदराबाद पहुंचते ही हमारे धर्मवीर दीवान सूर्यमल के पुत्रों के पास गए। बड़े का नाम दीवान मेवाराम था। ये युवक पंडित लेखराम को टालना चाहते थे; किन्तु लेखराम भला कोई टलने वाले आसामी थे! दूसरी, तीसरी, चौथी वार फिर गए और आग्रह किया कि जिस मौलवी पर उन्हें पूर्ण विश्वास हो उस के साथ मुबाहसा करा के सत्या-सत्य का निर्णय करालें। फिर पत्रों की भर-मार करदी। तव मजबूर हो कर मौलवियों को सामने आना पड़ा। मौलवी सय्यद महम्मद-अली-शाह के साथ सब से पहला मुबाहसा हुआ। विवादास्पद विषय यह था कि महम्मद साहेब के पास मोजज़े (Miracles) करामत थे वा नहीं। मौलवी साहेब तङ्ग आ गए और कुछ उत्तर न दे सके। तब दूसरे मौलवियों ने पत्र व्यवहार शुरु किया। मौलवी

महम्मदसद्दीक, हाजीसय्यद-गुलाममहम्मद, मुफ़तीसय्यद फ़ाज़िलशाह, सय्यद-हैदरअलीशाह—इन चार महाशयों की ओर से बड़े २ लम्बे पत्र आए। पण्डित लेखराम ने सिन्धी और उर्दू के पत्रों के उत्तर उर्दू में और फ़ारसी के पत्रों के उत्तर फ़ारसी भाषा में दिए। इस पत्र व्यवहार के पढ़ने से पंडित लेखराम की योग्यता का बड़ा उत्तम प्रमाण मिलता है। इस बड़े प्रयत्न का परिणाम यह हुआ कि दीवान सूर्यमल के दोनों पुत्रों को महम्मदी मत से घृणा हो गई और एक कुलीन आर्य्य परिवार की रक्षा का सौभाग्य आर्य्य पथिक को प्राप्त हुआ। यह जानना इस स्थान में मनोरञ्जक होगा, कि प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी वक्ता श्री प्रिन्सिपल वसवानी एम. ए. उन दिनों हैदराबाद में विद्यार्थी थे और उन के दिल में अपने धर्म शास्त्रों का गौरव, पंडित लेखराम से बात-चीत करने और उन के व्याख्यान सुनने से, बैठा था।

लाडकाना के कुछ बलात्कार से मुसलमान किए हुओं का प्रार्थना पत्र पंडित जी के पास हैदराबाद में ही पहुंचा था। उन लोगों ने शुद्ध हो कर आर्य्य समाज में प्रविष्ट होने की प्रार्थना की थी। किन्तु बीमार होजाने के कारण उस समय पंडित लेखराम उन की प्रार्थना को स्वीकार न करसके। परन्तु लेखराम का शुभ सङ्कल्प फिर फलीभूत हुआ और अनेक कष्ट सहन कर के उन में सैकड़ों भाई वैदिक-धर्म की शरण में आ कर परमार्थ रूपी धन को सञ्चय कर रहे हैं। हैदराबाद (सिन्ध) में ही पंडित लेखराम ने "क्रिश्चयन मत दर्पण" की तय्यारी शुरू कर दी थी और सृष्टि उत्पत्ति

तथा उस के इतिहास पर जो गवेषणा पूर्वक व्याख्यान उक्त पंडित जी दिया करते थे उस सब का विस्तार पूर्वक वर्णन " तारीख़-ए-दुनिया" नामी ट्रैक्टरूप से उन्हीं दिनों तय्यार किया गया था। सितम्बर (१८९१ ई०) मास में पिछला ट्रैक्ट छप-चुका था, जिस की समालोचना २९ भाद्रपद, सं० १९४८ के प्रचारक में प्रकाशित हुई थी।

मालूम होता है कि सिन्ध हैदरावाद से लौट कर पंडित लेखराम अधिकतः पञ्जाब में ही काम करते रहे। मन्ट-गुमरी आदि समाजों में व्याख्यान दे कर लाहौर पहुंचे और वहां पौराणिक मतखन्डन के व्याख्यानों की झड़ी लगादी। फिर ११ अक्टूबर को अमृतसर आर्य्य समाज के वर्षिकोत्सव के समय "आर्य्य-धर्म" पर ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा सार-गर्भित व्याख्यान दिया। इसी व्याख्यान की प्रशंसा सद्धर्म्म-प्रचारक में करते हुए मैंने देशभाषा के शार्टहैन्ड की आवश्यकता जतलाई थी।

नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में पंडित लेखराम लाहौर आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित रहे जहां २९ नवम्बर को अन्तिम व्याख्यान उन का हुआ, जिस में उन्हों ने सारे संसार के मतों का मुक़ाबिला कर के सिद्ध किया कि केवल वैदिक-धर्म ही मनुष्य को शान्ति दे सक्ता है।

दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में साधु केशवानन्द उदासी के शोर मचाने पर पंडित लेखराम जी को तार देकर आर्य प्रति-निधि सभा के मन्त्री जी ने बुलाया और नाहन राज में भेजा। साधु केशवानन्द के साथ महाराजा साहेब के सामने बात चीत

भी हुई और फिर आर्य पथिक के चार व्याख्यान हुए जिस के पश्चात् नाहन में आर्य समाज की स्थापना हुई।

राजपूताना के साथ विशेष सम्बन्ध

ऐसा मालूम होता है कि नाहन के शास्त्रार्थ और वहां आर्य समाज स्थापन कर ने के पश्चात् पंडित लेखराम कुछ दिन और पंजाब में काम करते रहे क्योंकि २१ मार्च, १८९२ को उन्होंने मियानी (ज़ि० शाहपुर) में नवीन समाज स्थापित किया था, और फिर राजपूताने की ओर गए। पहली वार जो सम्बन्ध बाबू रामविलास शारदा जी तथा अजमेर के अन्य आर्य पुरुषों से हुआ था वह इस वार अधिक दृढ़ किया। विशेषतः स्वर्गवासी वज़ीरचन्द्र जी के वहां होने से आर्य पथिक को उस प्रान्त से बड़ा प्रेम हो गया था। इस वार जून १८९२ ई० तक पंडित लेखराम बराबर राजपूताने में ही ऋषि जीवन की घटनाओं का पता लगाते रहे। राजपूताने के सर्व प्रसिद्ध रईसों, ठाकुरों और प्रतिष्ठित पुरुषों से मिल कर जो वृत्तान्त आर्य पथिक ने लिखा था वह सब जीवन चरित्र में छप चुका है।

इन दिनों की एक घटना पंडित जी के स्वभाव को दो अंशो में बड़ी विस्पष्टता से प्रगट करती है। बूंदी राज में जाकर ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी तथा स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी ने शास्त्रार्थ की धूम मचा दी थी। आर्य पुरुषों को जब यह पता लगा तो उन्हों ने दोनों सन्यासी महात्माओं की सहायता के लिए आर्य पथिक को भेजा। कुछ लोगों ने डराया भी कि रि-

यासत का मामला है, कहीं कष्ट न मिले; परन्तु धर्म युद्ध का नरसिंहा जब बज गया तो लेखराम को रोकने वाली कोई भी शक्ति नहीं थी। अकेले सिंह की न्याईं सीधे बूंदी में पहुंचे। वहां जा कर पता लगा कि महाराजा साहेब के विशेष शास्त्रार्थ से इन-कार कर देने पर दोनों सन्यासी महात्मा लौट गए हैं। पंडित लेखराम भी जहाज़पुर में लौट आए, जहां सायंकाल को पहुं-चते ही इन के व्याख्यान का विज्ञापन जहाज़पुर के हाकिम ने (जो आर्य सामाजिक थे) घुमा दिया। रात को व्याख्यान में सर्व साधारण के साथ फ़ौज के सिपाही और अफ़सर भी आए; उन में से पैदल का सूबेदार मुसलमान था। आर्य प-थिक ने अन्य विषयों के साथ महम्मदी मत का भी कुछ कड़ा खन्डन किया। इस पर मुसलमान सूबेदार ने दिल्लगी में कहा—"ऐसे ही तीस-मारखां थे तो बूंदी से क्यों भाग आए।" हाज़िर जवाब लेखराम को सोचने की ज़रूरत न थी; उत्तर दिया—"विपत्ती शास्त्रार्थ से भाग गया और हम लौट आए; कुछ आं हज़रत (अर्थात् महम्मद साहेब) की तरह हिजरत कर के (भाग कर) तो नहीं आए।" इस पर मुसलमान सूबेदार की आंखें लाल हो गईं और उस ने तलवार के कब्ज़े पर हाथ रक्खा। वीर लेखराम ने गरजते हुए कहा—"मुझे तलवार की धमकी दिखाता है; अगर है पठान का तो तलवार निकाल कर मज़ा देख।" हाकिम ने मुसलमान सूबेदार को अलग बैठा दिया और फिर किसी ने चूं तक न की।

अजमेर के सम्बन्ध में यहां बाबू रामविलास शारदा जी

के पत्रों से कुछ भाग उद्धृत करता हूं जिस से आर्य पथिक के स्वभाव और काम पर बड़ा प्रकाश पड़ता है:—

"स्वामी दयानन्द सरस्वती को छोड़ कर जिन के विषय में कुछ नहीं जानता क्योंकि मैं उन दिनों कालेज में पढ़ता था और आर्य समाज का सभासद् नहीं था मैंने जितने संन्यासी तथा उपदेशक देखे हैं ऐसा सच्चा दृढ़ मोहक्किक निर्लोभी, परिश्रमी, जितेन्द्रिय अपने समय को व्यर्थ न खोने वाला एक भी मनुष्य नहीं देखा। व्याख्यान देने तथा लोगों की शंका समाधान करने के अलावा जो समय उन को मिलता था वह प्रायः पुस्तक देखने तथा वैदिक-धर्म के बिरोधियों को उत्तर देने में लगाया करते थे।

आर्य्य समाजों की अंदरूनी हालत पर निहायत अफ़सोस किया करते थे और कहते थे कि तुम्हारे लोगों में पोप घुसे हुए हैं जो मौका पा कर समाजों का सत्यानाश कर डालेंगे और वे पं० भीमसेन का नाम अक्सर इस सिलसिले में लिया करते थे और उन की हेर फेर वाली इबारत पर अक्सर अत्यन्त क्रोधित होते थे। लोग इस विषयमें पण्डित जी को कट्टर बतला कर टाल दिया करते थे परन्तु जो लोग उन से भले प्रकार विज्ञ थे वे जानते थे कि धर्म वीर आर्य्य पथिक का एक २ शब्द ठीक था। पंडित जी से देश सुधार व वैदिक–धर्म के प्रचार के विषय पर जब २ बातें होतीं तो आप फ़रमाया करते थे कि आर्यावर्त्त का उद्धार उस समय तक नहीं होगा जब तक कि लोग वेदों पर पूरा २ विश्वास नहीं करेंगे। नवीन बेदान्तियों व अन्य

लोगों की दूर दर्शिता से यह ख़याल आम तौर से फैल रहा है कि उपनिषद् वेदों से आला है। भोले लोग यह नहीं जानते कि यह वेदों से ही निकले हैं, कई तो उन के सूक्त के सूक्त ही हैं। मेरा विचार उपनिषदों का तरज़ुमा कर ने का है जिस की भूमिका में यह सब मसले हल करूंगा। और लोगों के दिलों में वेदों की बज़ुरगी बिठलाने का यत्न करूंगा। शोक यह है कि पण्डित जी के दिल की दिल में ही रही।

इस बात का विचार मुद्दत से था कि आर्य्य पुरुषों के पढ़ने योग्य पोपलीला से रहित निर्भ्रान्त मनु-भाषा-टीका छपवाई जावे। मैंने इस विचार को पण्डित जी के सामने पेश किया तो आपने इस का भाषान्तर करना मंजूर किया; आप फ़रमाते थे कि मैंने २६ मनुस्मृतियें इकट्ठी की हैं और जो कश्मीर से मनुस्मृति हाथ लगी है वह बहुत नायाब। आप पण्डित गुरुदत्त जी के नोटों के विषय में भी कहते थे और फ़रमाते थे कि श्रीमान् शाहपुरा-धीशों ने भी जिन्हों ने तीन महिने तक मनुस्मृति को श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से पढ़ा था बहुत कुछ बातें बतलाई हैं। छपाई आदि के विषय में सब शरतें निश्चित होने पर आपने कार्य आरम्भ भी कर दिया था और एक अध्याय का भाषान्तर कर भी दिया था जो उन के कागज़ों में मौजूद हैं और मेरे नाम से एक विज्ञापन भी लिख रक्खा था। इस के पश्चात् मैंने अपने शास्त्रोद्धार का स्कीम पेश किया जिस में वेदों, उपनिषदों, छः शास्त्रों का उपनिषद् भाषान्तर व महाभारत व वाल्मीकी रामायण के सार व सूर्य्य

सिद्धान्त, चरक, सुश्रुत आदि का छपवाना, बाद निकालने परि-क्षिप्त श्लोकों के, किया। आपने फ़रमाया कि मनुभाष्य के पश्चात् वे बाल्मीकीय रामायण को लेवेंगे जिस के लिये उन्हों ने मसाला तय्यार कर रक्खा था। आप का विचार एक प्राचीन इतिहास लिखने का भी था और अंग्रेज़ी की (Nineteenth century) के मुआफ़िक़ एक मासिक रिसाला निकालने का इरादा रखते थे जिस में आर्यावर्त्त के सब विद्वान् आर्य्य भ्राता मज़मून भेजा करें। अजमेर से भी दो एक नाम आपने लिखे थे। आपने यहां स्वामी जी के जीवन चरित्र के मुत्तालिक़ बहुत दिनों तक काम किया था और यहां के मशहूर हकीम पीर जी से थोड़ा सा मुबाहसा भी हुआ था जो कि पीछे इन की बड़ी तारीफ़ किया करते थे। आप पादरीग्रे, मौलवी मुरादअली, पंडित शिवनरा-यण जी शास्त्री आदि बहुत से लोगों से मिले थे जिस का पूरा २ हाल स्वामी जी के जीवन चरित्र के लेखों से मिल रहा है। आप के अजमेर में कम से कम १५ व्याख्यान हुए होंगे जिन में बावजूद (Oratery) न होने के लोग बहुत संख्या में जमा होते थे और बहुत ही संतुष्ट हो कर घर को जाते थे। इतिहास व प्राचीन तहक़ीक़ात से भरे हुए ऐसे व्याख्यान लोगों ने कभी नहीं सुने और अब तक तारीफ़ करते हैं।"

इन्ही दिनों पंडित लेखराम जी ने "वैदिक विजय पत्र" से जिहाद विषयक लेखों को इकट्ठा कर के "रिसाला जिहाद" छपवाया था क्योंकि उस की समालोचना १४ मई, १८६२ के सद्धर्म-प्रचारक में निकली थी।

ऐसा मालूम होता है कि पंडित लेखराम जून के अन्तिम सप्ताह वा जूलाई के आरम्भ में फिर राजपूताने से लौट आए थे क्योंकि उन के लिखे हुए "कस्तूरी की प्राप्ति" विषयक दो लेख १६ जुलाई और २७ अगस्त के प्रचारक में दर्ज हुए हैं। पहला लेख भेजते समय पंडित लेखराम जी लाहौर में थे और दूसरा लेख उन्हों ने मुज़फ्फ़रगढ़ आर्य्य समाज से भेजा था । २३ जूलाई १८६२ के प्रचारक में बख़्शी सोहनलाल (वर्तमान आनरेबल तथा रायबहादुर) के मांस भक्षण समर्थक लेख का उत्तर भी आर्य्य पथिक का लाहौर से भेजा हुआ ही छपा है। फिर ३ और १० सितम्बर के प्रचारक में वृक्षों में जीव सम्बन्धी विचार पूर्ण दो लेख पंडित लेखराम के लह्यिया (ज़िला डेरा इस्माइलखां) से भेजे हुए छपे हैं। मालूम होता है कि डेराजात के ज़िलों में धर्मप्रचार करने के पश्चात् पंडित लेखराम सीवी (बलोचिस्तान) में स्वामी नित्यानन्द सरस्वती जी सहित पंडित प्रीतम शर्मा पौराणिक के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए गए थे क्योंकि उन का वहां २२ जुलाई १८६२ को पहुंचना प्रचारक में छपा है।

प्रीतमदेव ने तो शास्त्रार्थ से पीछा छुड़ाना चाहा किन्तु उसी शाम को उस से १०० गज़ की दूरी पर पंडित लेखराम का सिंहनाद सुनाई देने लग गया । पण्डित प्रीतम शर्मा ने तो स्वामी नित्यानन्द जी के सामने आकर शास्त्रार्थ को कटे के लिए मुलतवी किया और २४जुलाई को चल दिया; परन्तु प-

पण्डित लेखराम जी चार पांच दिनों तक स्वामी जी के साथ सीवी में ही व्याख्यान देते रहे। फिर कूटे से होते हुए ११ सितम्बर को क़सूर (ज़ि० लाहौर) आर्य्य समाज में जा कर एक व्याख्यान दिया। २८,२६ सितम्बर को हम पण्डित लेखराम को अमृतसर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं। अक्टूबर मास के आरम्भ में पण्डित लेखराम जी जालन्धर पहुंचे। उन दिनों छावनी में जाटों का रिसाला नम्बर १४ था जिस का अधिक भाग आर्य्य समाजी था। पण्डित लेखराम जी का एक व्याख्यान सदर बाज़ार में हुआ, और फिर दो व्याख्यान चौदहवें रिसाले में हुए। वह दृश्य भूलने योग्य नहीं, क्योंकि मैंने भी आर्य्य पथिक के साथ २ वहीं व्याख्यान दिए थे। रिसाले का अपना बड़ा शामियाना लगा कर मण्डप खूब सजाया गया। छावनी के तीन चार-सौ श्रोताओं के मध्य चार पांच सौ सवार वर्दी पहिन कर अपने सर्दारों सहित उपस्थित रहते थे। अंग्रेज़ औफ़िसर भी दोनों दिन व्याख्यानों में आते रहे और व्याख्यान सुन कर बड़े प्रसन्न होते रहे।

जालन्धर से पंडित लेखराम पोठोहार (पञ्जाब प्रान्त) में प्रचार के लिए गए। १६ अक्टूबर को उन का व्याख्यान आर्य्य समाज भवन (ज़िला झेलम) में होना समाचार पत्र में छपा है।

इस के पश्चात् पता लगता है कि ऋषि दयानन्द के जन्म स्थान की तलाश में पंडित लेखराम फिर राजपूताने की

ओर चल दिए। बहुत से विश्वस्त पुरुषों से पता लगा था कि स्वामी जी का जन्म-स्थान मोरबीराज में है, इस लिए अजमेर से आर्य्य पथिक अहमदाबाद को चल दिए। मैं बतला चुका हूं कि बाबू रामविलास शारदा जी पर आर्य्य पथिक का बड़ा विश्वास था इस लिए काठियावाड़ से उन्हीं के नाम पत्र लिखते रहे। उस समय के लिखे हुए तीन पोस्टकार्ड मुझे मिले हैं। पहला ३० अक्टूबर, १८९२ को मोरबी से भेजा हुआ है। उस में बांकानीर के मार्ग से मोरबी पहुंचने का हाल लिख कर अपनी डाक महाशय काशीराम दुबे, एम. ए., हेडमास्टर मोरबी हाइस्कूल द्वारा मंगाई है और साथ ही याचना की है कि पण्ड्या मोहनलालादि से, स्वामी दयानन्द महारज के जन्म-स्थान के विषय में, पूछ कर जो कुछ पता लग सके जानने वालों से लिखवा भेजें।

दूसरा पोस्टकार्ड १५ नवम्बर को मोरबी की डाक में डाला गया। इस का अनुवाद यह है—"एक पत्र आप का, एक बनवारीलाल जी का, एक श्रीस्वामी आत्मानन्द जी महाराज का, एक मास्टर वज़ीरचन्द्र जी का पहुंच कर समाचार ज्ञात हुए। टिनकारा में मैंने (ऋषि-दयानन्द के जन्म-स्थान की) बहुत ढूंढ की, पता न मिला। लोग मोरबीख़ास का बहुत ख़याल करते हैं। अब वहां अन्वेषण कर रहा हूं ? १४ वा १५ ग्रामों में ढूंढ चुका हूं।......मुझे १०,११, १२ (नवम्बर,१८९२) को ज्वर हुआ, बड़े ज़ोर से; परन्तु अब सर्वथा निरोग हूं।........

"पंड्या जी का कोई पत्र नहीं आया । वेद-भाष्य-भूमिका के विषय में मैंने एक पत्र श्यामसुन्दर जी को लिखा था, फिर आप भी (उन को) स्मरण करावें। जब से आया हूं कोई (अङ्क) सद्धर्म्मप्रचारक पत्र (का) नहीं आया। यदि हो सके तो चार (पिछले) अङ्क भेजदें.........इस ओर छूतछात का बड़ा झगड़ा और ज्वर का ज़ोर है; आर्य्य समाज से लोग सर्वथा अभिज्ञ हैं......................." तीसराकार्ड ६ दिसेम्बर को राजकोट से चला। इस में लिखा है—" मैं २ दिसम्बर, १८६२ से राजकोट में आया था। यहां आठ दिन रहा। यहां का हाल मालूम किया, परन्तु कोई हाल स्वामी जी की जन्म-भूमि के सम्बन्ध में न मिला। आज फिर बांकानेर जाता हूं और कई दिन वहां रहूंगा।..............बांकानेर प्रान्त के विषय में ही लोगों को सन्देह है कि शायद स्वामी जी उसी प्रान्त के हों। दूसरे मोरबी और बांकानेर (एक दूसरे से) बहुत समीप हैं।...........यहां पहले आर्य्य समाज था, परन्तु अब चिरकाल से दूर हुआ है; कोई भी आर्य्य पुरुष यहां नहीं है। लोगों से बात चीत होती रहती है; उपदेशकों की बहुत ज़रूरत है।"

पिछले दो कार्डों में एक और परिवर्तन देखा जाता है। जहां पहले पत्र और लिफ़ाफ़ा दोनों फ़ारसी अक्षरों में होते थे, वहां इन में लिफ़ाफ़ा देवनागरी अक्षरों में लिखा हुआ है, और कुछ काल के पश्चात् देखा जाता है कि संस्कृत या आर्य्य-भाषा जानने वालों के नाम आर्य्य पथिक के पत्र आर्य्य-

भाषा में ही जाने लग गए थे ।

इसी वर्ष " क्रिश्चियन मतदर्पण " मेरठ के विद्यादर्पण प्रेस में छप कर तय्यार हुआ जिस की समालोचना १२ नवम्बर, १८९२ के सद्धर्म्म-प्रचारक में छपी है ।

सं० १८९३ ई० के आरम्भ में ही पण्डित लेखराम ने स्वामी दयानन्द के जन्म-स्थान के अन्वेषण का काम समाप्त कर लिया था । यद्यपि इस समय टिनकारा के समीप ही जन्म-स्थान का नया निश्चय नए आन्दोलन कर तो रहे हैं, तथापि आर्य्य पथिक ने जो निश्चय करना था उसे दृढ़ कर लिया और अजमेर में लौट कर अन्तिम व्याख्यान दे कुछ और आन्दोलन करते हुए आगरे में पहुंचे । वहां २५ फरवरी से १ मार्च सं० १८९३ ई० तक स्थानीय आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव पर तथा मित्र सभा में उन के व्याख्यान होते रहे । आगरा आर्य्य समाज के उत्सव में धर्म्म-चर्चा के समय आर्य्य पथिक ने ऐसे सन्तोष-जनक उत्तर दिए कि प्रश्न कर्त्ताओं को भी मानना पड़ा कि उन की तसल्ली हो गई है ।

आगरा से मालूम होता है कि पंण्डित लेखराम जी फिर राजपूताने की ओर अपने पुरुषार्थ का फल प्राप्त करने अर्थात् ऋषि-जीवन के अन्वेषण का सारांश निश्चय कर ने के लिए चले गए क्योंकि २५,२६ मार्च, १८९३ को उन्हों ने जयपुर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव पर दो बड़े ही जन-प्रिय व्याख्यान दिए ।

इस समय पंजाब में घरू-युद्ध की अग्नि बड़े वेग से भड़क उठी थी और जिस आर्य्य प्रतिनिधि सभा और आर्य्य समाजों की संस्था के साथ पण्डित लेखराम आर्य्य पथिक आर्य समाजों में नाम लिखाने के दिन से काम करते आए, उस की अवस्था बड़ी डांवाडोल हो चली थी। यह निश्चय करना कि वास्तविक अपराध किस दल का था, और इस बात की मीमांसा करना कि द्वेषाग्नि का पहला पलीता किस ने छोड़ा, इस समय अनावश्यक है। इस विषय के पाप-पुण्य का ठीक गलों में मढ़ना उस समय होगा, जब किसी निर्पक्ष लेखनी से आर्य समाज का इतिहास लिखा जायगा, परन्तु यहां केवल इतना बतलाना है कि घरू युद्ध के कारण एक ओर तो सर्व साधारण आर्य-जनता का समूह और संस्था का बल था और दूसरी ओर यद्यपि जन संख्या बहुत कम थी तथापि धन बल, राज बल तथा नीति बल अधिक था। सम्मति भेद के सब कारणों में से उस समय भक्ष्या-भक्ष्य का प्रश्न बहुत कुछ आगे बढ़ा हुआ था। स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने का भी यद्यपि विरोध होता था, वैदिक-साहित्य की शिक्षा की मात्रा पर भी यद्यपि मत भेद था तथापि मांस भक्षण वेद-विरुद्ध पाप है वा नहीं इस विषय पर बड़ा भारी युद्ध था।

ऐसी विपत्ति के समय में पण्डित लेखराम की पञ्जाब में बड़ी भारी आवश्यक्ता प्रतीत हुई। प्रबल सांसारिक नीति का मुक़ाबिला ढिलमुल विश्वासी केवल शान्ति का पठ करने वाले स्वार्थी कैसे कर सक्ते? जिस प्रकार राजर्षि-गोविन्दसिंह महा-

राज अपने विश्वास-पात्र ख़ालसों के विषय में कह सक्ते थे कि—"सवा लाख से एक लड़ाऊं" और जिस प्रकार अकेले नैपोलियन की रण-भूमि में उपस्थिति एक लाख सेना के तुल्य समझी जाती थी उसी प्रकार मानो ब्रह्मर्षि-दयानन्द का आत्मा अदृश्यवाणी द्वारा आर्य जनता से कह रहा था कि आर्य्य समाज की परिधि में यदि सर्व प्रलोभनों से बच कर कोई धर्म की सेवा कर सक्ता है तो वह लेखराम है। धन, मान, प्रतिष्ठा, प्रशंसा के वशी-भूत हो कर कई प्रचारकों तथा प्रतिष्ठित पुरुषों को गिरते देख आर्य्य प्रतिनिधि सभा के सामयिक प्रधान ने आर्य्य पथिक पण्डित लेखराम को पंजाब में बुला लिया।

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान का निवास-स्थान जालन्धर शहर था, इस लिए राजपूताने से पण्डित लेखराम सीधे जालन्धर नगर में पधारे। १८ अप्रैल को स्थानीय आर्य मन्दिर में ऋषि दयानन्द के जीवन पर व्याख्यान दिया और इस व्याख्यान में ही पहली वार बतलाया कि आर्य्य समाज के प्रवर्त्तक के गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती का जन्म-स्थान करतारपुर (ज़िला जालन्धर) के समीप एक ग्राम में है। इसी समाचार को २१ अप्रैल, १८९३ के प्रचारक में जतला कर मैंने लिखा था—"सच-मुच एक महात्मा का स्वदेशी होना एक गौरव की बात है परन्तु जालन्धरियों को भली प्रकार याद रखना चाहिए कि यदि वे अपने आप को स्वामी विरजानन्द के स्वदेशी सिद्ध करना चाहते हैं तो उन को शम और दम की एक शिक्षा लेनी होगी।"

उसी समय आर्य्य पथिक पण्डित लेखराम ने, प्रसिद्ध योग-राज गूगल के बनाने वाले राय मूलराज बहादुर उप-प्रधान परोपकारिणी सभा से, सत्यार्थ-प्रकाश के उर्दू अनुवाद की आज्ञा मांगी थी किन्तु मांस भक्षण के विरोधी पण्डित लेखराम को ऐसी आज्ञा कैसे मिल सक्ती! मुझे पण्डित लेखराम जी की, इस विषय में, अकृत-कार्यता पर बड़ा शोक है, क्योंकि यदि उक्त पण्डित जी सत्यार्थ-प्रकाश का अनुवाद उर्दू में कर जाते तो जो अशुद्धियां अब आर्य्य समाजियों को निरर्थक शास्त्रार्थों में फंसाती हैं उन से वह अनुवाद विमुक्त होता।

२८ अप्रैल १८९३, के प्रचारक से "आर्य समाज की ज़रूरत" पर एक लेख-माला आर्य्य पथिक की ओर से आरम्भ हुई है। इस लेख माला में ऐतिहासिक दृष्टि से आर्य्यसमाज की आवश्यकता जतलाई गई है।

जालन्धर से लाहौर होते हुये पण्डित लेखराम झेलम आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए और शङ्कासमाधान में भाग लेने के अतिरिक्त उन्हों ने वैदिक-धर्म की श्रेष्ठता पर एक सार-गर्भित व्याख्यान दिया। उस से पहले पण्डित लेखराम औरङ्गाबाद और मियानी काला में व्याख्यान दे चुके थे।

झेलम से छुट्टी लेकर पण्डित लेखराम अपने निवास स्थान कहूटा में पहुंचे। वहां एक मास तक पण्डित जी रहे परन्तु वहां से भी लेख बराबर समाचार पत्रों में [विशेषतः प्रचारक में] भेजते रहे। उसी स्थान में उन के पास दीवान टेकचन्द्र

[वर्तमान डिपुटी कमिश्नर] का पत्र इङ्गलेन्ड से आया था। उस पर जो नोट आर्य्य-मुसाफ़िर ने कहूटे से लिख कर भेजा था वह जतलाता है कि आर्योपदेशक का आदर्श वह क्या समझते थे। पण्डित लेखराम लिखते हैं—"विविध भाषाओं में सच्चे धर्म की पुस्तकों का अभाव, विविध भाषाओं द्वारा आर्य्य-धर्म के उपदेश करने वालों की कमी, देशान्तरों में आर्य्यसमाज का अस्तित्व अभाव के बराबर, धम पर जान न्योछावर करने वालों की आवश्यकता में प्रति-सैकड़ा एक सौ की कमी और उस पर घर की फूट—त्राहिमान! त्राहिमान! प्यारे भाइयो! विचारो और समझो। (अंग्रेज़) लोग सिविल सर्विस पास कर के जब देखते हैं कि धर्म के प्रचार की ज़रूरत है तो झट उस से अलग हो धर्म के उपदेशक बनने के लिए प्रार्थनाएं करते हैं, फिर ईश्वर जाने स्वीकार हो वा न। इधर हमारे यहां की हालत वर्णन करने योग्य नहीं है.........हमारे उपदेशकों में,थोड़े विद्वानों के अतिरिक्त, कई ऐसे भी हैं जो भोजन भट्टों की सूची में जाने योग्य हैं। क्षमा कीजिए, मैं वा अन्य कोई समाजों को भली प्रकार जानने वाला उन्हें उपदेशक नहीं मानता, क्योंकि वह तो ख़ाकियों में ख़ाकी, उदासियों में उदासी, निर्मलों में निर्मले और सन्यासियों में स्वामी........"

"आर्य्यसमाज की ज़रूरत" का शीर्षक दे कर जो लेखमाला पण्डित लेखराम ने इन दिनों सद्धर्मप्रचारक में छपवाई थी, उस में वह कहते हैं—"मई सं० १८८१ में जब लेखक (पं० लेखराम) ऋषि दयानन्द की सेवा में अजमेर उपस्थित

हुआ तब उन्हों [ऋषि दयानन्द] ने कहा था कि आर्य्यसमाजों की ओर से एक अंग्रेज़ी मासिक वा समाचार पत्र निकलना चाहिए, जिस में वेदों के मन्त्रों का अनुवाद देने के अतिरिक्त साव-जनक लाभ की बातें भी दर्ज हों।"

गृहस्थाश्रम में प्रवेश।

वैशाख सम्वत १९५० विक्रमी के आरम्भ में पण्डित लेखराम पूरे ३५ वर्ष के हो चुके थे। उसी वर्ष के ज्येष्ठ मास में छुट्टी लेकर अपने निवासस्थान ग्राम कहूटा में गए और अपनी आयु के ३६ वें वर्ष के आरम्भ में मरी-पर्वतान्तरगत भन्न ग्राम निवासिनी कुमारी लक्ष्मी देवी के साथ उनका विवाह संस्कार हुआ। ऋषि आज्ञा को शिरोधार्य समझते हुए पण्डित लेखराम ने विवाह तो किया परन्तु जहां तक उन से हो सका वसु* ब्रह्मचारी पद से ऊपर उठने का यत्न करते रहे।

ऐसा ज्ञात होता है कि पौराणिक पूजादि तो कहां साधारण जातीय रिवाजों की ज़ंजीरों को भी पण्डित लेखराम ने इस विवाह पर तोड़ डाला था। हमारे चरित्र नायक के चचा श्री गण्डाराम जी लिखते हैं कि पण्डित लेखराम ने अपने विवाह पर पञ्जाब के रिवाजानुसार तम्बोल इत्यादि नहीं लिया था।

मुझे पण्डित लेखराम बतलाया करते थे कि विवाह होते ही उन्हों ने अपनी धर्मपत्नी को पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। देवीलक्ष्मी की अपने पति में अनन्य भक्ति थी और इस लिये वह

*-वसु वह कहलाता है जो २४ वर्ष की आयु के अन्त तक विवाह न करे।

उन्हें प्रसन्न करने का सदा प्रयत्न किया करतीं।

विवाह के पश्चात् पण्डित लेखराम कुछ दिनों और अपने ग्राम में रह कर अपनी धर्म-पत्नी को धार्मिक-शिक्षा देना चाहते थे परन्तु जब उस समय के धर्म-युद्ध में सहायता की आवश्यकता होने पर मैंने उन्हें बुलाया तो गृहस्थ के सर्व विचारों को शिथिल कर के वह तत्काल ही मेरे पास आ पहुंचे।

जोधपुर में मांस का झगड़ा
और
आर्य्य पथिक का आक्रमण ।

लाहौर में जो मांस-भक्षण विषयक झगड़ा चला था उस को बहुत पुष्टि जोधपुर से मिली थी । जोधपुर राज के मुख्य प्रबन्धकर्त्ता तीन पीढ़ियों से अबतक महाराज मेजरजनरल-सर प्रतापसिंह चले आते हैं । महाराज प्रतापसिंह थे और अब तक हैं भी तो ऋषि दयानन्द और वैदिक-धर्म के दृढ़ भक्त, परन्तु उन के मन में यह बात बैठ गई है कि मांस-भक्षण के बिना राजपूत जाति की वीरता स्थिर नहीं रह सक्ती । लाहौर में आर्य्य समाज के दो दल हो जाने के पश्चात् स्वामी प्रकाशा-नन्द मांस-दल की ओर से जोधपुर पहुंचे । वहां उन्होंने यह लीला रची कि समाचार पत्रों के सम्पादकों तथा धर्मोपदेशकों से मांस-भक्षण के समर्थन में व्यवस्था दिलाई जावे । इसी लीला की पुष्टि में आर्य्य गज़ट, तथा भारत सुधार नामी मांस-भक्षण का समर्थन करने वाले समाचार पत्रों के सम्पादकों को पारितोषिक मिले । एक दो प्रसिद्ध आर्य्य पुरुषों ने भी महाराजा प्रतापसिंह की हां में हां मिलाकर "रूप्योऽसौ भगवान् स्वयम्" के साक्षात दर्शन किए । कुछ आर्य्य समाजी पण्डितों को भी भुर्सी दक्षिणा बांटी गई । तब सोचा गया कि कोई बड़ी चोट लगानी चाहिए । उस समय पण्डित भीमसेन ऋषि दया-नन्द के निज शिष्य समझे जाते थे, और मेरठ के पण्डित गङ्गा प्रसाद एम. ए. स्वर्ग-वासी पण्डित गुरुदत्त के पीछे उन के सदृश

विद्वान् माने गए थे। इन दोनों महानुभावों को महाराजा साहेब की ओर से निमन्त्रण गया। पण्डित भीमसेन फिसलने वाले प्रसिद्ध थे इसी लिए उन को ठीक अवस्था में रखने के लिए वीर आर्य्य पथिक को भेजा गया।

पण्डित भीमसेन और पण्डित गङ्गाप्रसाद एम. ए. दोनों २ अगस्त, १८९३ ई० के प्रातः जोधपुर पहुंचे। पण्डित गङ्गाप्रसाद को बहुत से लालच दिए गए परन्तु उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि धन वा प्रतिष्ठा का लालच उन्हें धर्म से च्युत नहीं कर सक्ता। ४ अगस्त को पण्डित भीमसेन जी की पहली भेंट महाराजा प्रतापसिंह से हुई। पण्डित भीमसेन ने यह तो कहा कि वेद में मांस-भक्षण का प्रत्यक्ष खण्डन है परन्तु यह मान कर कि हिंसक पशुओं का वध पाप नहीं, उन्होंने दबे दांतों ऐसे पशुओं के मांस के भक्षण का विधान कर दिया।

५ अगस्त को प्रातःकाल ही पण्डित लेखराम जी जोधपुर में पहुंचे और सारा हाल सुना। वीर आर्य्य पथिक ने पण्डित भीमसेन की खूब ख़बर ली, क्योंकि स्वामी प्रकाशानन्द ने झूठा समाचार फैलाया था कि पण्डित भीमसेन मांस भक्षण का समर्थन कर आए हैं। बेचारा भीमसेय बहुत गिड़गिड़ाया परन्तु धर्म वीर बिना ठीक प्रतिज्ञा कराए कब छोड़ते थे—"ईश्वर जानता है,अगर तूने महाराजा के पास स्पष्ट जाकर न कहा कि वेद में मांस-भक्षण का सर्वथा निषेध है तो तुझे किसी धार्मिक संस्था में पैर रखने के क़ाबिल नहीं छोड़ूंगा।" पण्डित भीमसेन दूसरे दिन ही विदा होने गए और बिना पूछे ही महाराजा

प्रतापसिंह से स्पष्ट शब्दों में कह दिया—"मांस-भक्षण पाप है। और वेदों में हानि-कारक पशुओं को दण्ड देने और अधिक हानि पहुंचायं तो मार डालने की भी आज्ञा है, परन्तु मांस उन का भी अभक्ष्य ही है। और मैंने जो यह कहा था कि उन के मांस खाने में अधिक दोष नहीं है, (सो) उस का यह आशा नहीं लिया जा सक्ता कि हानि कारक पशुओं का मांस खाना चाहिए, वा उस में कोई दोष नहीं है। मेरा तात्पर्य यह था कि ऐसे पशुओं के मारने में संसार की कुछ हानि नहीं है और उपकारी पशुओं के मांस खाने की अपेक्षा कम दोष है, परन्तु दोष अवश्य है। इस लिए हानि-कारक पशुओं का मांस भी नहीं खाना चाहिए, वह भी सर्वथा अभक्ष्य है" आर्य्य पथिक की धमकी ने इतना असर किया कि पण्डित भीमसेन के लिए जो १०००) भेंट का स्वीकार हुआ था वह आधा ही रह गया और पण्डित भीमसेन की आर्य्य पथिक पर इतनी श्रद्धा बढ़ गई कि उन्होंने जोधपुर से लौटते ही पण्डित लेखराम की "तारीख़-ए-दुनिया" का आर्य्य-भाषा में अनुवाद कर के "ऐतिहासिक निरीक्षण" नाम से मुद्रित कर दिया और शायद इस प्रकार जोधपुर के ५००) की कमी पूरी की।

जोधपुर में मांस प्रचारकों का भंडा फोड़ कर कुछ दिनों ऋषि जीवन सम्बन्धी मसाला वहीं एकत्र करते रहे, परन्तु विरोधी उन के आक्रमण से ऐसे तङ्ग आ गए थे कि उन्हें अधिक दिनों तक जोधपुर ठहरने में अपनी बड़ी हानि समझतेथे। जहां कहीं आर्य्य पथिक आन्दोलन करने जाते महाराजा प्रतापसिंह

का गुप्तचर साथ जाता। पहले हल्ले में जो कुछ घटनाएं लिखी गईं वह तो ठीक रहीं परन्तु उसके पश्चात् लोगों ने डरके मारे ऋषि जीवन सम्बन्धी घटनाएं ही बतलानी बन्द कर दीं। तब पण्डित लेखराम फिर पंजाब की ओर लौट आए।

जो पत्र जोधपुर से पण्डित लेखराम जी ने लिखे थे उन से ज्ञात होता है कि प्रकाशानन्दादि के घोर विरोध पर भी आर्य्य पथिक अपने काम पर डटे रहे और अन्त को सारा आन्दोलन कर के ही लौटे।

इन्हीं दिनों अमेरिका के चिकागो नगर की प्रदर्शिनी की तय्यारियां हो रही थीं और आर्य्य समाजों की ओर से कोई विशेष प्रतिनिधि भेजने का विचार छिड़ रहा था। जोधपुर में ही राव राजा तेजसिंह से आर्य्य पथिक को पता लगा कि भास्करानन्द (जो महाराजा प्रतापसिंह का भेजा हुआ उन दिनों अमेरिका में था) चाहता है कि आर्य्य समाज उसे अपना प्रतिनिधि चुनले। पण्डित लेखराम जानते थे कि वह धूर्त्त है अतएव उन्होंने आर्य्य जनता को सचेत कर दिया। दूसरी ओर साधु शुगनचन्द भी आशागतों में थे और अपनी वक्तृता के नमूने आर्य पब्लिक को दिखाते फिरते थे। पण्डित लेखराम ने स्वयम् तय्यार कर के एक अपील बाबू रामविलास जी को दी जो उन्होंने आर्य्य पब्लिक में मुद्रित कर दी। इस अपील में २०००) तो प्रचारक के मार्ग व्ययादि के लिए मांगा गया था और एक सुयोग्य अंग्रेज़ी के विद्वान् की सेवा मांगी थी। यह

दूसरी बात है कि कोई भी आर्य्य पुरुष जाने को तय्यार न हुआ परन्तु आर्य्य पथिक के धर्मानुराग में इस से कोई क्षति नहीं हुई। यदि स्वयम् अङ्गरेज़ी पढ़े होते तो अवश्य स्टीमर में बैठकर चिकागो चल देते।

पंजाब में संस्था की दृढ़ता
और
धर्म प्रचार का यौवन ।

जोधपुर से लौटकर पंजाब में स्थान स्थान से पण्डित लेखराम की मांग आने लगी । जहां कहीं भी विरोधियों की ओर से आर्य्य समाज पर आक्रमण होता, रक्षा के लिए आर्य पथिक को ही कष्ट देना पड़ता ।

पंजाब में लौटते ही पहला धावा पण्डित लेखराम का श्री गोविन्दपुर (ज़ि० गुरुदासपुर) पर हुआ । २३, २४ सितम्बर सं० १८९३ को बराबर वार्षिकोत्सव मनाया जाता रहा जिस में पण्डित लेखराम का सर्वोत्तम व्याख्यान हुआ । परन्तु आर्य पथिक के उच्च स्वभाव का इस से पता लगता है कि उत्सव का हाल प्रचारक में भेजते हुए जहां अन्य सब उपदेशकों के व्याख्यानों की बड़ी प्रशंसा की है वहां अपने व्याख्यान का साधारण वृत्तान्त कालम की २½ पंक्तियों में समाप्त कर दिया है । मुझे आर्य पथिक के पत्र व्यवहार से भी प्रमाण मिले हैं और मैं स्वयम् भी जानता हूं कि अन्य बहुत से उपदेशकों की शैली के विरुद्ध पण्डित लेखराम का सदैव यह प्रयत्न हुआ करता था कि आर्य समाज की वेदी से जो भी उपदेशक व्याख्यान देने खड़ा हो वह सर्व-साधारण में कृत-कार्य हो कर ही बैठे ।

श्री गोविन्दपुर से लौट कर ऋषि-जीवन का वृत्तान्त एकत्र करते हुए, पण्डित लेखराम मेरे पास जालन्धर पहुंचे और मुझे पेशावर आर्य्य-समाज के उत्सव पर ले जाने के लिए आ-ग्रह किया। मुझे इनकार कब हो सक्ता था।

पेशावर की इस बार की यात्रा मुझे केवल इसी लिए स्म-रणीय नहीं है कि मैं पहले पहल अटक से पार चला था प्र-त्युत इस लिए भी कि पण्डित लेखराम के कई पक्के विचार मुझे इसी यात्रा में मालूम हुए। पण्डित लेखराम पलाण्डु (पियाज़) के बड़े पक्षपाती थे और समझते थे कि इस के सेवन से आर्य्य गृहस्थों को वञ्चित रखना अपनी जाति की शारीरिक अवस्था के साथ शत्रुता करना है। मुझ से पहले इस विषय पर बात चीत हुई। मेरे मनु का प्रमाण देने पर आपने कहा—"प्रथम तो पलाण्डु के अर्थ प्याज़ हैं ही नहीं; और यदि मान भी लो तो यह श्लोक ही प्रक्षिप्त है।"

फिर ब्रह्मावर्त की सीमा पर बात चीत छिड़ी। पण्डित लेखराम जी ने पौराणिकों की मानी हुई सरस्वती का खण्डन कर के बतलाया कि सरस्वती से तात्पर्य "ब्रह्मा पुत्रा" नदी का है जो भारत की पूर्वीय सीमा पर होती हुई समुद्र में जा मिलती है। आप ने कहा—"सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री कही जाती है, पुत्र का स्त्रीलिङ्ग हुआ पुत्रा; पस "ब्रह्मा पुत्रा" और सरस्वती प-र्यायवाची शब्द हैं। सरस्वती कोई ऐसी नदी न थी जो मध्य-भारत में कहीं छिप गई हो।"इस के पश्चात् आप ने दृषद्वती से "अटक" महा नदी का तात्पर्य लिया। यहां यह याद रखना

चाहिए कि यदि सरस्वती पौराणिक कल्पना के अनुसार मानी जावे और "दृषद्वती" से ब्रह्मपुत्र नदी समझें तो पण्डित जी का निवास-स्थान कहूटा ब्रह्मावर्त में सिद्ध नहीं होता। अब दूसरी प्रभात की घटना समझमें आ जायगी।

बात चीत करते २ हम दोनों सो गए। प्रातः उठकर मैंअपने विचार में निमग्न था कि रेल अटक के पुल के पास पहुंची और पंडित लेखराम ने मेरी बांह पकड़ कर कहा—"लाला जी! उठिए, उठिए! देखिए क्या इस से बढ़ कर कोई पत्थरों वाली नदी हो सक्ती है?" दृश्य बड़ा गम्भीर तथा उच्च था। मैं इस अपूर्व चित्तोत्कर्षक दृश्य की ओर टिक टिकी लगाए खड़ा था कि आर्य्य-पथिक के शब्दों ने झटका देकर जगा दिया—"लाला जी देखिए—यह पत्थरों वाली दृषद्वती नदी है, सरस्वती ब्रह्मपुत्रा है और इन दोनों देव नदों के मध्य का स्थान ब्रह्मावर्त है।" मैंने उत्तर में कहा—"पण्डित जी! मैंने आज मान लिया कि "कहूटा" ग्राम ब्रह्मावर्त्त का ही एक भाग है।" पण्डित जी के मुंह पर विशाल मुसकिराहट के चिन्ह दिखाई देने लगे और हंसते हुए बोले—"ईश्वर जानता है, आप मज़ाक़ में बात उड़ा देते हैं। मेरा मतलब तो इल्मी तहक़ीक़ात से था।"

व्याख्यानादि तो वार्षिकोत्सव में हुए ही परन्तु धर्म-चर्चा के समय बड़ा आनन्द आया। यह बात प्रसिद्ध थी कि पण्डित लेखराम वृक्षों में जीवात्मा की विद्यमानता नहीं मानते थे। एक मांस प्रचारक महाशय ने यह प्रश्न उठा कर कि वृक्षों में जीवा-

त्मा है वा नहीं उत्तर पंडित लेखराम से मांगा; तात्पर्य इस प्रश्न से यह था कि यदि वृक्षों में जीव विषय में मत भेद रखता हुआ एक पुरुष आर्य्य-समाजी रह सक्ता है तो मांस-भक्षण का प्रचार करने पर किसी को क्यों आर्य्य-समाज से अलग किया जावे। मैं यह कह कर, कि प्रश्न आर्य्य-समाज पर होना चाहिए न कि विशेष व्यक्ति पर, उत्तर के लिए उठा ही था कि पंडित लेखराम स्वयम् उत्तर देने के लिए खड़े हो गए और निम्न लिखित मनोरञ्जक प्रश्नोत्तर हुए—

प्रश्नकर्त्ता—"क्या आप वृक्षों में जीव मानते हैं?"

उत्तर—"क्या एक जीव? एक वृक्ष में एक क्या अनेक जीव पाए जाते हैं और ऐसा ही मैं भी मानता हूं।"

प्रश्न—"मैंने तो सुना था कि आप वृक्षों में जीव नहीं मानते।"

उत्तर—"तुम अजीब भोले आदमी हो। अब तो मैं तुम्हारे सामने हूं। सुनी सुनाई बात पर बुद्धिमान पुरुष विश्वास नहीं करते। कल्पना करो कि वृक्ष को जीव-धारी ही मानलें तो ऐसी अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि वृक्ष में जीव शुषुप्तावस्था में है। तब तुम्हारा बकरे आदि का मांस खाना क्या वृक्ष के फल खाने के समान होगा? भोले भाई! पशु पक्षी का मांस बिना हिंसा के उपलब्ध नहीं होता, और वक्ष को तुम्हारे फल तोड़ लेने से कुछ कष्ट ही नहीं प्रतीत होता।"

श्रोतागण को पता लग गया कि प्रश्न कुटिल भाव से किया गया है और प्रश्न-कर्त्ता लज्जित हो कर बैठ गया।

पंडित लेखराम की हाज़िर जवाबी उन्हें बहुधा अनावश्यक वाद-विवाद से बचा दिया करती थी। एक बार रेल की यात्रा में एक उदासी साधु का साथ हुआ। बात चीत चलने पर उस ने स्वामी दयानन्द को साधु निन्दक सिद्ध करने के लिए कहा—"दयानन्द ने गुरु-नानक जी को दम्भी लिखा है और उन की निन्दा की है। यह सन्यासियों का काम नहीं।" पंडित लेखराम उदासी जी को बड़े प्रेम से समझाने लगे और कहा—"देखो बाबा नानक जी के आशय की तो स्वामी जी ने प्रशंसा ही की है। हां, वेदों की कहीं कहीं निन्दा उन से सहन न हुई और संस्कृत न जानते हुई भी उस में पग अड़ाते देख कर यह लिखा है कि दम्भ भी किया होगा ...." पंडित लेखराम ने बहुत कुछ समझाना चाहा परन्तु उस उदासी बाबा ने शोर मचा दिया और उन की एक न सुनी। मेरे शिर में कुछ पीड़ा थी इस लिए मैं स्टेशन आने पर दूसरे कमरे में चला गया। अगले स्टेशन के रास्ते में भी उदासी बाबा बहुत गरम रहे, किन्तु जब अगले स्टेशन पर रेल धीमी हुई तो अब उदासी जी दबे हुए से प्रतीतपड़े और पंडित लेखराम तेज़ सुनाई दिए। मैं भी फिर उसी कमरे में चला गया तो विचित्र दृश्य देखा। उदासी जी तो कुछ शान्ति की याचना कर रहे हैं और पंडित लेखराम उन को दबा रहे हैं। मालूम हुआ कि जब समझाने पर उदासी दबाए ही चला गया तो पंडित लेखराम ने कड़क कर कहा—

" अच्छा अगर बाबा नानक खुद कहदे कि मुझ में दम्भ है तौ ? " उदासी कुछ आश्चर्यित सा हो कर बोला " यह क्या ? " पंडित लेखराम ने सिक्खों के ग्रन्थ से एक वाक पढ़ा जिस मेंदो तीन साधारण निर्बलताओं के साथ दम्भी शब्द भी था। अब तो उदासी बाबा कुछ ढीले हुए और जब मैं पहुंचा तो कह रहे थे—"यह तो कसरनफ़सी है। इस का यह मतलब थोड़े ही है कि श्री गुरु-महाराज दम्भी थे।" हाज़िर जवाब लेखराम ने उत्तर में दस घृणित पापों के नाम ले ले कर कहा—"यह सब पाप अपने में क्यों न बतलए ? तुम बाबा नानक को मक्कार समझते हो; हम तो उन्हें ईश्वर के सच्चे भक्त समझते हैं। उन्हों ने मेरे कहे हुए दुराचारों का नाम इस लिए नहीं लिया कि उन में वह ऐब न थे। दो तीन कमज़ोरियां ही ग़रीब में थीं और उन से बचने की प्रार्थना अपने मालिक से की। तुम चाहे अपने गुरु को मक्कार समझो हम तो बाबा नानकदेव जी को सच्चा ईश्वर-भक्त समझते हैं। "

उदासी जी फिर कुछ गुन गुनाना चाहते थे परन्तु आर्य्य-पथिक ने यह कह कर बात चीत की समाप्ति कर दी—"बस साहब ! मैं तुम से बात करना भी पाप समझता हूं। तुम गुरु-निन्दक हो " और उदासी जी की वाणी पर ताला लग गया।

पेशावर के जलसे पर जाने से पहले पंडित लेखराम मांस-भक्षण के विषय पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिख कर छपवा गए

थे जिस की समालोचना ६ कार्तिक सम्वत् १९५० के सद्धर्म-प्रचारक में निकली थी। इस लघु पुस्तक का नाम था "आर्य्य-समाज में शान्ति फैलाने का उपाय और रामचन्द्र जी का सच्चा दर्शन।" वेद-शास्त्र के प्रमाणों से मांस-भक्षण का स्पष्ट निषेध दिखलाते हुए स्वामी दयानन्द जी के मन्तव्य को उन के ग्रन्थों से स्पष्टतया दिखलाया और अन्तिम भाग में "रामचन्द्र का दर्शन" नामी काव्य के कवि की इस कल्पना का (जो वह जन-साधारण में मौखिक फैलाते थे) कि राम-चन्द्र जी ने मांस खाया, "रामचन्द्र का सच्चा दर्शन" लिख कर प्रबल प्रमाणों तथा युक्तियों से खन्डन किया।

जिन सज्जनों को मांस का प्रचार अभीष्ट था और जो मांस-भक्षण से ही राष्ट्र में जीवन फूंकना सम्भव समझते थे वे प्रायः पंडित लेखराम को 'पेशावरीगुन्डा" की उपाधि देते थे। यह इस लिए नहीं कि पंडित लेखराम कुछ अधिक कटु बचन बोलते वा बहुत तीखा व्यक्ति-गत आक्रमण करते थे, प्रत्युत इस लिए कि जहां औरों के कटाक्ष "व्यक्ति-गत आक्र-मण" कह कर टाले जा सक्ते थे वहां आर्य्य-पथिक की युक्तियों का युक्ति युक्त उत्तर देना बड़ी टेढ़ी खीर थी। इसी लघु पुस्तक के प्रथम भाग में केवल प्रमाण दिए और उन का समर्थन युक्तियों से किया है। समाप्ति पर ग्रन्थ-कर्त्ता का केवल तीन पंक्तियों में निवेदन है—"पस सब वेद के मानने वालों को योग्य है कि यथार्थ सत्य-शास्त्र की रीत्यानुसार मद्य-मांसादि दुष्ट वस्तुओं का त्याग कर के सदा उस भोजन का भोग करें

जो रक्त युक्त न हो और जिस के लिए हमें निरापराधी पशुओं के गले पर छुरी न चलानी पड़े; यही ईश्वर की आज्ञा है।"

इस लेख को पढ़कर सर्व पाठकों को उन लोगों की बुद्धि पर आश्चर्य होगा जिन्होंने लेखराम को "पेशावरी गुण्डा" की उपाधि दी थी, परन्तु अन्याय का राज्य सदा के लिए नहीं रहता; समय आया जब उन्हीं उपाधि देने वालों ने लेखराम के पवित्र नाम से हिमालय की चोटियों तक को गुंजा दिया और सच्चे ब्राह्मण उपदेशक के चरणों में शिर निवा कर अपने किए पाप का प्रायश्चित्त किया।

पेशावर से लौटने के पश्चात् हम पं० लेखराम को २८, २९ अक्तूबर रावलपिन्डी में और ३१ अक्टूबर १८९३ के दिन लाहौर में, "वर्तमान दशा और हमारे कर्त्तव्य" पर व्याख्यान देता पाते हैं। फिर नवम्बर के आरम्भ में उन का व्याख्यान जालन्धर आर्य्य-समाज में हुआ। शायद इसी सन् के सितम्बर मास में पं० लेखराम अपनी धर्म-पत्नी को जालन्धर ले आए थे और इस लिए यही नगर उन का निवास-स्थान बन गया था।

जालन्धर में ही बैठकर जहां एक ओर पं० लेखराम ने ऋषि जीवन की तय्यारी का आरम्भ किया वहां उन्हीं दिनों अपनी सब से बड़ी पुस्तक "सबूत-ए-तनासुख" नामी पुनर्जन्म को सिद्ध करने के लिए लिखकर पूर्ण करली और उस के छपाने का विज्ञापन भी सद्धर्म-प्रचारक में दे दिया। इस पुस्तक पर जो परिश्रम करना पड़ा होगा उस का अनुमान वे सज्जन ही

लगा सक्ते हैं जिन्होंने संसार भर के मतवादियों के आक्षेप इस सिद्धान्त पर पढ़े हैं। बाहर वालों को तो एक सदा भ्रमण करने वाले यात्री की लेखनी से ऐसा अपूर्व ग्रन्थ तय्यार होते देख कर विस्मयसा होता था परन्तु मुझ से व्यक्ति को जिस ने आर्य्य-पथिक को एक पल भी व्यर्थ गंवाते नहीं देखा था कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ ।

इन दिनों आर्य्य-समाज में घरू युद्ध की ज्वाला बड़े वेग से प्रज्वलित हो रही थी। लाहौर में आर्य्य-समाज के दो टुकड़े हो चुके थे और आर्य्य-प्रतिनिधि सभा के वार्षिकाधिवेशन में भी शिक्षित दल की सभ्यता का चमत्कार दिखाई दे चुका था। परन्तु पंडित लेखराम उस समय भी वाह्य विरोधियों के आक्रमणों से ही आर्य्य समाज की रक्षा करने में लगे हुए थे। चारों ओर से महम्मदियों के आक्रमण रोकने के लिये आर्य्य-पथिक की मांग आती थी; इसी लिए २७ कार्त्तिक १९५० के प्रचारक में मैंने लिखा था—"ज्ञात हुआ है कि महाराजा कृष्ण प्रसाद जी पेशकार मन्त्री सेना विभाग (राज हैदराबाद दक्षिण) इसलाम की ओर झुके हुए हैं और आर्य्य-पथिक की मांग हो रही है। परन्तु कुराना-चार्य्य जहां एक ओर महर्षि के जीवन चरित्र की तय्यारी में सन्निद्ध है वहां दूसरी ओर शरीर को खेद भी है। लेकिन एक आदमी क्या कर सक्ता है......."

पंडित लेखराम को मैंने इन दिनों ऋषि जीवन वृत्तान्त की तय्यारी में निरन्तर लगा दिया था, परन्तु अपना नियत काम समाप्त करने पर उन्होंने जालन्धर के बाज़ारों में नित्य प्रचार करना आरम्भ कर दिया। परन्तु जालन्धर में भी आर्य-पथिक को

बैठने कौन देता था। इसी वर्ष (सं० १८९३ई०) के दिसम्बर में लाहौर नगर इन्डियन नैश्नल कांग्रेस का केन्द्र बन रहा था। राजनैतिकों के शिरोमणि दादा भाई नौरोजी प्रधान निर्वाचित हुए थे। दूर दूर से आर्य भाई भी आए थे। इस अवसर पर पंडित लेखराम को भी व्याख्यानों के लिये लाहौर बुलाना पड़ा। फिर लाहौर से लौटते ही समाचार आया कि शाहाबाद (ज़िला अम्बाला) के पास एक ग्राम में कुछ हिन्दू महम्मदी-मत ग्रहण करने वाले हैं। पंडित लेखराम की लात में एक फोड़ा था जिस से वह तङ्ग थे। मैंने तार सुनाया तो बिगड़ कर बोले—"आप लोग आदमी को मार डालते हो। भला ऐसे कष्ट में कैसे जा सक्ता हूं।" मैंने उत्तर दिया—"पंडित जी यह लोग बड़े निर्दई हैं। समझते नहीं कि हर समय मनुष्य का स्वास्थ एकसा नहीं रहता। आप इस विषय में कुछ न सोचें, मैं उत्तर दे दूंगा।"

पंडित लेखराम मेरे कार्य्यालय के सामने वाटिका की दूसरी सीमा वाले कमरे में काम किया करते थे; वहां चले गए। आध घन्टे के पश्चात् फिर मेरे पास आकर बैठ गए—"क्यों साहब! किस को भेजने का ख़्याल है?" मैंने उत्तर दिया—"पंडित जी! यह लोग बड़े बेपरवा हैं। इन को स्वयम् भुगतना चाहिए, और क्या हो सक्ता है।" आर्य्य-पथिक कुछ रुक रुक कर बोले—"वे ग़रीब क्या करेंगे; कुछ तो इन्तज़ाम होना चाहिए" मैंने उत्तर में कहा—"कहिए तो पंडित लालमणि को भेज दूं।" पंडित लेखराम मुसकिरा कर बोले—"ईश्वर जानता है आप ने मुझे क़ायल कर दिया; रात की रेल में ही चला जाऊंगा।"

पंडित लेखराम जी धर्म सेवा के भाव का यह एक ही दृष्टान्त नहीं है। मैंने यह एक नमूना पेश किया है।

शाहाबाद के पास वाले ग्राम में मुसलमान होने वालों को बचाकर, इस्माईलाबाद में तीन व्याख्यान दिए जिन के प्रभाव से पीछे वहां आर्य्य-समाज स्थापित हो गया। फिर शाहाबाद, थानेसर, और करणाल में व्याख्यान देकर जालन्धर लौट आए। शाहाबाद में आर्य-समाज का स्थापन होना भी इसी बार के प्रचार का फल था। इस धावे पर जाते हुए मैंने आर्य-पथिक से प्रतिज्ञा की थी कि छुट्टी के दिनों में मैं भी उन की सहायता के लिए पहुंचूंगा, परन्तु उन्होंने शाहाबाद पहुंचते ही मुझे लिख दिया कि मेरी कुछ आवश्यकता नहीं। पंडित लेखराम किसी को भी अनावश्यक कष्ट नहीं देते थे और यह देख कर, कि मेरी अनुपस्थिति में आर्य-प्रतिनिधि सभा पञ्जाब का काम बिगड़ेगा, उन्होंने अकेले ही सब काम कर लिया।

ऊपर लिखित सब काम करते हुए भी पंडित लेखराम का अन्ध विश्वासों की पोल खोलने के लिए समय मिल जाता था। २० जनवरी के ताजुल अख़बार में एक समाचार निकला कि एक सय्यद जलाली की क़ब्र खुदवा कर टाउन हाल में मिलाने के कारण मुज़फ्फ़र नगर का एक तहसीलदार अन्धा हो गया और जाइन्ट मजिस्ट्रेट पागल हो गए। पंडित लेखराम ने समाचार पढ़ते ही अपने एक मित्र, मुज़फ्फ़र नगर के रईस, से असल हाल पूछा जिनके पत्र से यह समाचार सर्वथा झूठा

सिद्ध हुआ; और उस पत्र व्यवहार को पंडित लेखराम ने २२ माघ १६५० के सद्धर्मप्रचारक में छपवा दिया ।

फरवरी,१८६४में मन्ट-गुमरी आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान देने के अतिरिक्त झङ्ग और कमालिया आदि स्थानों में प्रचार करते हुए लाहौर पहुंचे । इसी मास के प्रचारक में एक लेख माला आरम्भ हुई जिसे पंडित लेखराम के धर्म पर बलिदान होने के पश्चात् "तक़ज़ीब बुराहीन अहमदिया"के दूसरे भाग में सम्मिलित किया गया था । इस लेख माला में अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि "असकन्दरिया" (मिश्र प्रान्त) का प्रसिद्ध पुस्तकालय महम्मदी पक्षपात की ही भेंट चढ़ा था ।

ऋषि जीवन की तय्यारी के साथ साथ मौखिक-धर्म-प्रचार का कार्य भी बराबर जारी रहने का प्रमाण समाचार पत्रों के अवलोकन से मिलता है । १४ मार्च से २२ मार्च तक श्री गोविन्दपुर तथा आस पास के ग्रामों में धर्म-प्रचार की धूम रही, शङ्का-समाधान ख़ूब होता रहा । वहां से लौट कर कुरुक्षेत्र की भूमी में प्रचार के लिए पंडित लेखराम मेरे साथ चल दिए ।

जिस प्रकार चन्द्रग्रहण पर काशी में गङ्गास्नान का माहात्म है उसी प्रकार सूर्य-ग्रहण को कुरुक्षेत्र के तालाब में डुबकी लगाने से, पौराणिक मतावलम्बी, स्वर्ग प्राप्ति की कल्पना करते हैं । ६ अप्रैल, १८६४ को सूर्यग्रहण होने वाला था और इस लिए २६ मार्च को ही सरकारी हस्पताल के पास सड़क के

किनारे पर स्थान साफ़ कर के आर्य्य-समाज का प्रचार-मण्डप खड़ा कर दिया गया और अप्रैल के आरम्भ से ही वैदिक-धर्म के प्रचार का काम शुरू कर दिया गया। इस प्रचार में शंका-समाधान का काम प्रायः पंडित लेखराम जी ही करते रहे। "धर्म की असलियत और उस का आन्दोलन" विषय पर जो व्याख्यान इस स्थान पर पंडित लेखराम ने दिया वह बड़ा ही चित्ताकर्शक था। दूसरे व्याख्यान में आप ने यह जतलाया कि आर्य्य-समाज ऋषियों की निन्दा नहीं करता बल्कि उन के सिद्धान्तों को फैलाता है। ६ अप्रैल को मेरे साथ पंडित लेखराम कर्णाल चले आए जहां ७, ८ और ६ अप्रैल को आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में दो व्याख्यान देने के अतिरिक्त शंका-समाधान भी ख़ूब किया। वार्षिकोत्सव के पश्चात् मैं तो चला आया परन्तु आर्य-मुसाफ़िर एक मास तक कर्णाल में ही रहे क्योंकि जिस टाङ्ग के फोड़े के कारण मैं उन्हें शाहाबाद नहीं भेजना चाहता था वह फोड़ा इतस्ततः भ्रमण करते फिरने के कारण बहुत ख़राब हो गया था। इसी फोड़े के सम्बन्ध में एक मनो-रञ्जक बात मुझे याद आई है। पंडित जी ने कुछ सभासदों से पूछा—"किसी आर्य्य-डाक्टर के पास मुझे ले चलो तो फोड़ा दिखलाऊंगा।" एक अधिकारी ने किसी मुसलमान डाक्टर का नाम ले कर कहा कि उसे बुला कर दिखाएंगे। पंडित जी ने फिर पूछा कि क्या कोई आर्य्य डाक्टर नहीं है। लाला कर्त्ताराम ने कहा—"डाक्टर तो कोई आर्य्य-समाज का सभासद्र नहीं। इलाज में आर्य्य अनार्य्य-पना क्या घुसा है।" आर्य्य-पथिक की आंखें लाल हो गई

और बोले—" ख़ाक आर्य्य-समाज है ! एक डाक्टर को भी आर्य्य नहीं बना सक्के । " मैंने हंस कर कहा कि जिस समाज का कोई डाक्टर सभासद् न हो तो क्या उसे आर्य्य-समाज ही न समझा जाय । आर्य्य-पथिक ने कुछ गम्भीर हो कर उत्तर दिया—"जिस आर्य्य-समाज ने डाक्टरों, स्कूल के अध्यापकों और विद्यार्थियों को आर्य नहीं बनाया उस ने क्या ख़ाक काम किया । जड़ को सींचने से ही वृक्ष हरा होता है।" इस उत्तर ने मेरा अन्तःकरण तक लेखराम के पैरों में झुका दिया था ।

इस एक मास के कर्णाल निवास के समय की कुछ घटनाएं लाला कर्त्ताराम जी ने लिखी हैं जिन का संक्षिप्त वृत्तान्त यहां देना शिक्षाप्रद होगा—"एक दिन एक पादरी साहेब पं० जी को मिलने के लिए आर्य मन्दिर में आए। मेरे सामने उन्होंने वैदिक-धर्म के विषय में कुछ प्रश्न किए जिनका उत्तर पंडित लेखराम जी ने बड़े नम्र,मधुर शब्दों में दिया । इस के पश्चात् पं० जी ने क्रिश्चियन मत के विषय में कुछ बातें पूछीं जो पादरी साहेब के बतलाने पर नोट करलीं । पादरी साहेब ने विदा होते समय पं० जी की योग्यता और शिष्टाचार की बहुत प्रशंसा की ।

"इन्हीं दिनों कर्णाल पोस्ट आफ़िस के महाशय गोपाल सहाय जी के पुत्र उत्पन्न हुआ । ज्योतिषी ने व्यवस्था दी कि लड़का माता, पिता, भाइयों को मार कर रहेगा । माता,

पिता ने उस के लिए दूसरे माता पिता ढूंढ़ने चाहे परन्तु ऐसी उत्तम ख्याति वाले बालक को अङ्गीकार कौन करता। पंडित लेखराम को जब पता लगा तो उन्हों ने समझा कर महाशय गोपाल सहाय को ऐसी अनुचित कार्य-वाही से रोका। परिणाम यह हुआ कि न केवल सारा परिवार ही जीवित है प्रत्युत उस बालक के दो भाई और हो चुके हैं और पिता की वेतन वृद्धी होती रही।

"पंडित जी सन्ध्या बन्धन में बड़े पक्के थे। नित्य शारीरिक व्यायाम भी करते थे। निकम्मे, ख़राब पके हुए भोजन से उन्हें घृणा थी। भोजन छादन में सावधान रहते। एक बार मैंने कहा—"महाराज! आप को भोजन विषय में कुछ नहीं कहना चाहिए। यह आप की शान के बरख़िलाफ़ है।" बड़ी सख़्ती से जवाब दिया—"हम लोग जो दिन रात बाहर घूमते और दिमाग़ी काम करते हैं अगर भोजन छादन में बेपरवाई करें तो काम कैसे होगा। जो उपदेशक इस विषय में सचेत न रहेंगे वे या तो शीघ्र मर जायंगे वा काम से थक कर बैठ जायंगे।

"प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठते थे। शौच के लिए बाहर जङ्गल में जाते थे। समय व्यर्थ नहीं खोते थे। कभी ख़ाली बैठे नहीं देखे गए। रात के ठीक दस बजे सो जाते थे। चार पांच घन्टे बराबर उपदेश देना उन के लिए साधारण बात थी। ऐसा निडर, धर्मात्मा, सदाचारी उपदेशक मैंने और नहीं देखा।" करणाल से शायद मई १८६४ के मध्य भाग में

आर्य्य-पथिक लौट आए और फिर जालन्धर में बैठ कर ऋषि-जीवन सम्बन्धी काम करते रहे। इस अन्तर में उन्हों ने स्थानीय प्रचार बन्द नहीं किया और आस पास भी धर्म-प्रचार के लिए जाते रहे। ५ जुलाई को उन का व्याख्यान जालन्धर आर्य्य-मन्दिर में होना छपा हुआ है।

६ जुलाई १८६४ को पंडित लेखराम जी मेरे साथ कोटा आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए चले। रास्ते में मुलतान में एक व्याख्यान दे कर कोटे पहुंचे। वार्षिकोत्सव से पहले "पुनर्जन्म" विषय पर उन का बड़ा सार-गर्भित और आन्दोलन पूर्ण व्याख्यान हुआ था। मैं तो वार्षिकोत्सव के पश्चात् १०००) से अधिक धन वेद-प्रचार निधि के लिए लेकर लौट आया परन्तु पंडित लेखराम जी कोटे में ही रह गए। वहां उन के १३ व्याख्यान हुए। वहां से हिरक, दोज़ान, मच्छ, बोस्तान, खोस्ट, शाहरिग में, कहीं दो कहीं तीन, व्याख्यान देते हुए सीबी में पहुंचे। १ अगस्त को यहां बड़ा प्रबल व्याख्यान हुआ और २ अगस्त को फिर सीबी निवासियों को सच्चे धर्म का सन्देश सुनाया गया। ५ अगस्त को पांच छः सौ की जन उपस्थिति में "दीन महम्मद" और "महम्मद मुस्तफ़ा" को शुद्ध कर के फिर से वैदिक-धर्म में प्रविष्ट कराया गया। ८ अगस्त को सक्खर में पहला व्याख्यान हुआ, और फिर तीन

व्याख्यान दे कर आर्य्य-पथिक ने सं० १८६४

ई० के आरम्भ में ही, जब कि उन को ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र को शीघ्र छपवा डालने की आशा बंध गई थी , भारतवर्ष का सविस्तर इतिहास निकालने से पहले एक मासिक पत्र निकालने का विचार किया था। उस का नाम करण संस्कार "विद्या वर्तक" किया था और उद्देश्य यह था कि उस के द्वारा वैदिक-धर्म के प्रचार तथा आर्य्य जाति की सेवा के सब काम किए जावें। अगस्त १८९४में पहले अङ्क की विषय सूची इस प्रकार तय्यार की थी—

(१) कितने आर्य्य-समाज स्थापित हुए, (२) कितने मुसलमान वा ईसाई शुद्ध हुए, (३) कितनी विधवाओं के विवाह हुए, (४) विद्या सम्बन्धी लेख, (५) नए विद्या सम्बन्धी निरुपण, (६) वेद सम्बन्धी शंकाओं का समाधान, (७) ऋषियों के जीवन चरित्र ।

पंडित लेखराम की इस शुभ इच्छा की पूर्ति के लिए आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने उनकी मृत्यु के डेढ़ वर्ष पश्चात् "आर्य्य मुसाफ़िर" नामक मासिक पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया था जो अब तक गिरता पड़ता चल रहा है। यदि इस पत्र को समयानुसार उर्दू भाषा में तत्वान्वेषण का साधन बनाया जावे तभी आर्य्य-समाज को एक जागृत शक्ति कहा जा सकेगा ।

सितम्बर, १८९४ का एक और नोट मुझे मिला है जिस से पंडित लेखराम के हृदय के भाव विस्पष्टता से प्रतीत होते हैं—

"समग्र भारत-वर्ष को आर्य-धर्म में लाने के निम्न साधन हैं । यदि इन में हम, ईश्वर की कृपा से, कृत-कार्य हों तो अवश्य सब लोग सद्धर्म में आजावें:—

प्रथम—विधवा विवाह वा और कोई साधन जिस से भविष्य में स्त्रियां मुसलमानी वा ईसाई न हों ।

द्वितीय—शुद्धी फ़न्ड जिस से सब मतों के अनुयायी वैदिक-धर्म में आ सकें ।

तृतीय—वेद प्रचार निधि स्थापित करना अर्थात् उपदेशक तय्यार करना ।

चतुर्थ—बचपन का विवाह रोकना ।"

पञ्चम—पुस्तक प्रचार प्रत्येक भाषा में और साईंस की वह बातें जो वेद-धर्म के विरुद्ध हों, उन पर विचार करना ।

षष्ठ—साधु कम हों और उपदेशक बनकर वर्तमान साधु धर्म का कार्य करें ।

सप्तम—दान की व्यवस्था ठीक करना ।"

सितम्बर १८६४ के मध्य में हम पण्डित लेखराम को श्री गोविन्दपुर अर्य्य समज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं ; और इन्हीं दिनों प्रचारक में "दरियाई मज़हब" पर आर्य्य-पथिक का एक विस्तृत नोट देखते हैं ।

ऐसा मालूम होता है कि श्री गोविन्दपुर से निवृत्त हो कर पण्डित लेखराम कुछ दिनों जालन्धर में जीवन-चरित्र का काम करते रहे और फिर २६ और ३० अक्टूबर १८६४ को गुरु-दास पुर आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। दोनों दिन "पुनर्जन्म" और "साचाई का मज़बूत चट्टान" विषयों पर ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े गम्भीर और जन-प्रिय व्याख्यान देकर महम्मदी प्रश्न-कर्त्ताओं की शङ्काओं का भी समाधान किया। गुरुदासपुर से लौट कर ही, अपनी धर्म-पत्नी को घर पहुंचा, पण्डित लेखराम कोहाट पहुंचे जहां उन्हों ने ५ नवम्बर से ११ नवम्बर, सं० १८६४ तक बराबर ६ व्याख्यान दिए। इन्हीं दिनों एक आर्य्य भाई के यहां मौत होजाने पर आर्य्य-पथिक ने मृतकसंस्कार वैदिक रीत्यानुसार कराया।

कोहाट में पण्डित लेखराम के व्याख्यानों की वैसी ही धूम मच गई जैसी अन्य स्थानों में सुनने में आती थी। यहां बन्नू आर्य्य-समाज की ओर से तारों पर तारें आती रहीं क्योंकि एक मास से बन्नू निवासी आर्य्य-पथिक के व्याख्यानों के प्यासे बैठे थे। अन्त को १२ नवम्बर के दिन कोहाट से तार-समाचार पहुंचा कि पण्डित लेखराम जी टाङ्गा में बन्नू को चल दिए हैं। आर्य्य भाई नगर निवासियों समेत टाङ्गा के स्थान में पहुंच गए और हमारे चरित्र नायक का स्वागत कर भजन कीर्तन करते हुए उन्हें नौ बजे रात के आर्य्य-मन्दिर में पहुंचाया।

दूसरे दिन से ही व्याख्यानों का सिलसिला शुरू हो गया।

ईश्वर की हस्ती, मुक्ति-पथ, धर्म्म, सचाई का चट्टान और आर्य्य-जीवन (विषयों) पर बड़े सार-गर्भित तथा दिलों को हिलाने वाले व्याख्यान हुए। एक दिन प्रश्नोत्तर के लिए रक्खा गया जिस में किसी अन्य मतावलम्बी ने तो कोई प्रश्न न किया, किन्तु सनातन-धर्म्म-सभा के मन्त्री का पत्र आदित्यवार को शास्त्रार्थ के लिए नियत करने के निमित्त आया। तदानुसार आदित्यवार को बड़ी जन उपस्थिति में सनातन-सभा के मन्त्री तथा एक अन्य पण्डित का "क़ाफ़ियातङ्ग" कर दिया। इन्हीं दिनों में से १६ जनवरी का दिन अपने अन्वेषण के अनुराग की तृप्ति के लिए नियत किया और ग्राम कक्किभरत् केखन्ड-रात को जा कर देखा। लोगों में प्रसिद्ध है कि भरत की नन्ह-साल अर्थात् महाराजा कैकेय की राजधानी इसी स्थान में थी। एक पुराना सिक्का देख कर पीछे से उस को २२) रुपयों तक ख़रीदने की भी आज्ञा मन्त्री आर्य्य-समाज को भेजी, किन्तु जिस मनुष्य के पास वह सिक्का था, वह उस समय मर चुका था।

२० नवम्बर को पण्डित लेखराम का अन्तिम व्याख्यान था। विषय "आर्य्य-जीवन" था। इस व्याख्यान में आर्य्य-जीवन का चित्र खींचते हुए मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र, हक़ीक़तराय, पूर्ण भक्तादि के दृष्टान्तों को श्रोतागण के आगे ऐसी योग्यता से रक्खा कि मृत प्राणियों में भी जीवन पड़ गया और पत्थर दिलों को भी मोम बना आठ आठ आंसू रुलाया।

२१ नवम्बर को बन्नू से चल कर डेराइस्माइलखां के रास्ते लाहौर आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए प्रस्थान किया। मालूम होता है कि २२ नवम्बर की रात को दरियाखां रेलवेस्टेशन से लाला मूसा के लिए चल दिए जहां २३ नवम्बर के प्रातःकाल पहुंच गए। लाला मूसा में कुछ देर तक ठहरना पड़ता है क्योंकि रावलपिण्डी से डाक यहां १२ बजे के पश्चात् पहुंचती है।

पण्डित लेखराम अपना समय व्यर्थ गंवाने वाले न थे इस लिए स्टेशन के किसी बाबू से समाचार-पत्र मांगे। जो पत्र बाबू ने दिए उन्हीं में ७ नवम्बर का मित्र-विलास मिल गया। उसी समय डायरी में नोट कर लिया—"१० अक्टूबर के मेसेन्जर में लिखा है कि परोपकारिणी-सभा सत्यार्थ-प्रकाश में से वह लेख जो बाबा नानक के बाबत है निकाल देवें। देखना है कि समाज इस को क्या समझती है" (मित्रविलास)—

उत्तर—परोपकारिणी-सभा इस को नहीं निकाल सक्ती। समाज इस को स्वामी जी की तहरीर (लेख) समझता है और जब तक उस की ग़लती मालूम न हो बिल्कुल सही समझता है। और ग़लती मालूम हो जाने पर आर्य्य-समाज नियम ४ के अनुसार ग़लती क़बूल (भूल स्वीकार) करने को तय्यार है। लेखराम आर्य्य-मुसाफ़िर बक़लमखुद—मुफ़स्सिल जवाब दिया जायगा। २३ नवम्बर, १८९४, रेलवेस्टेशन लालामूसा।"

धुन यह लगी रहती थी कि आर्य्य-समाज पर कोई आक्षेप ऐसा न रहे जिस का उचित उत्तर न दिया जाय। इन्हीं दिनों दक्षिण-हैदराबाद में निज़ाम की पुलिस ने पंडित गोकलप्रसाद पौराणिक के मुक़ाबिले में व्याख्यान देने वाले पंडित बालकृष्ण शास्त्री आर्य्योपदेशक तथा ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी को राज से बाहिर कर दिया था। उस का हाल मित्रविलास में पढ़ कर नोट कर लिया कि उस के विषय में आन्दोलन कर के आर्य्य-समाज की रक्षा के लिए लेख लिखेंगे।

२३ नवम्बर की डाक में लाहौर पहुंच कर पंडित लेख-राम जी ने नगर कीर्तन की शोभा अवलोकन की और २४ नवम्बर को आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में, मद्ध्यानोत्तर के समय, पौराणिक सभा की ओर से पंडित गोपीनाथ, गोपाल शास्त्री और एक साधु को लेकर आए थे। पौराणिकों की वक्तृताओं का ज़िक्र कर के सद्धर्म्म-प्रचारक में लिखा है—"किन्तु जब आर्य्य-मुनि जी ने दोनों (सनातनी) बोलने वालों का परस्पर विरोध, अपनी प्रबल युक्तियों से, दिखलाया और आर्य्य-पथिक ने वेद प्रमाणों से सनातनियों के प्रमाणों और युक्तियों को खण्ड खण्ड कर दिया तो फिर जो प्रभाव श्रोता-गण पर पड़ा उस का अनुमान वही लोग कर सक्ते हैं जिन्हों ने इन दोनों उपदेशकों के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ देखे हैं।"

२५ नवम्बर को अन्तिम व्याख्यान पंडित लेखराम का था। समय केवल एक घन्टा दिया गया था परन्तु जब आर्य्य-

पथिक आर्य्य-समाज के नियमों की व्याख्या करने लगे तो फिर श्रोता-गण भला कब हिलने का नाम लेते। अढ़ाई घन्टे तक बराबर श्रोता-गण लिखित चित्रवत् बैठे रहे। यदि वक्ता एक घंटा और बोलते तब भी श्रोता-गण बैठे रहने को तय्यार थे।

लाहौर से आर्य्य-पथिक अपने जन्म दाता आर्य्य-समाज पेशावर में गए और ३ से ५ दिसम्बर, १८६४ तक बराबर व्याख्यान दिए। ६ दिसम्बर को रावलपिंडी उतरे परन्तु व्याख्यान का प्रबन्ध न होने के कारण अपने निवास-स्थान कहूटा को चले गए। इस बार अपने ग्राम में लाभचन्द्र भजनीक को भी साथ ले गए और दो दिनों तक वैदिक-धर्म का खूब प्रचार हुआ। वहां से रास्ते में गूजर खां, चकवालादि स्थानों में वैदिक-धर्म का डंका बजाते हुए २५ दिसम्बर, सं० १८६४ को जालन्धर आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में आकर सम्मिलित हुए।

पंडित लेखराम चकवाल में थे जब ईसाई अख़बार "नूर-अफ़शां" में किसी का छपवाया हुआ लेख देखा जिस में लिखा था कि पण्डित लेखराम ने एक बार गुजरात में ईसा के विचित्र जन्म का पता वेदों से दिया था। आर्य्य-पथिक ने वहीं से उस लेख का खन्डन सद्धर्म्म-प्रचारक के लिए भेजा, जो १५ पौष १६५१ के अङ्क में छपा था।

जालन्धर आर्य्य-समाज के इस वार्षिकोत्सव में पण्डित लेखराम का पहला व्याख्यान स्मरणीय है। विषय "धर्म प-

रीक्षा की कसौटी" था जिसे आर्य्य-पथिक ने ऐसा प्रभावशाली बनाया कि सद्धर्म प्रचारक के संवाददाता के शब्दों में—"एक साधू, जो आगरे के राय शालिग्राम का चेला हो चुका था, और राधा स्वामी के जाप में निमग्न था, व्याकुल हुआ। पण्डित (लेखराम) जी से फिर मिला और अन्त को वैदिक धर्म की शरण में आकर उस ने राय शालिग्राम को पोस्ट-कार्ड भेज दिया कि पण्डित लेखराम का व्याख्यान सुनकर उसे राधा स्वामी मत पर बिश्वास नहीं रहा।"

ऋषि जीवन की छपवाई
और
लाहौर की स्थिति ।

स्वामी दयानन्द के जीवन चरित्र की पूर्ति के लिए आवश्यक यह था कि पण्डित लेखराम बाहर के आन्दोलन के पश्चात् किसी विशेष स्थान में बैठकर काम करें, परन्तु एक ओर पण्डित लेखराम का अपना धार्मिक उत्साह और दूसरी ओर आर्य्य जनता की आवश्यकताएं उन को एक स्थान में बैठने न देती थीं । आर्य्य-प्रतिनिधि-सभा ने कई बार विशेष नियम बना बना कर पंडित लेखराम को दिए, परन्तु आर्य्य-पथिक के धार्मिक जोश को ठन्डा करने के लिए कोई भी नियम पर्याप्त न थे। जीवन चरित्र का काम करते हुए उनको बुलाने के लिए यह लिख देना काफ़ी था कि एक आर्य्य-जातिस्थ पुरुष मुसलमान होने वाला है या किसी महम्मदी प्रचारक के साथ शास्त्रार्थ की संभावना है; और फिर यदि सभा की ओर से आक्षेप होता तो पंडित लेखराम का यह उत्तर, कि शास्त्रार्थ के दिनों का वेतन काट लो, सभा के अधिकारियों को चुप कराने का अपूर्व साधन था। मेरे पास पण्डित लेखराम को इसी लिए रक्खा गया था कि जमा किए वृत्तान्त को किसी क्रम से ठीक कर के छपवाने का प्रबन्ध करूं। परन्तु यह इकट्ठा किया हुआ मसाला समझ में नहीं आ सक्ता था जब तक पंडित लेखराम ही उसे नोटों से साहित्य का रूप न देते, और मैं आर्य्य-पथिक को प्रचार के लिए भेजने पर मजबूर था। जब मैंने सभा में रिपोर्ट

करदी कि पड़ताल का कार्य किसी अन्य सज्जन के सुपुर्द हो, तो सर्व पत्रादि राय ठाकुरदत्त जी के पास भेजे गए। परन्तु जब राय साहेब ने भी इन पत्रों को अभी अपूर्ण बतलाया तो फिर यह निश्चय हुआ कि लाहौर में स्थित हो कर पण्डित लेखराम ही ऋषि का जीवन वृत्तान्त ठीक कर के छपवाना आरम्भ करदें।

उपरोक्त निश्चय के अनुसार पं० लेखराम जी ने लाला जीवनदास पेन्शनर के मकान में रहने का प्रबन्ध किया और अपनी धर्म-पत्नी को लाहौर लाने के लिए जनवरी, १८९५ के मध्य भाग में घर की ओर चल दिए। मार्ग में गुजरात के आर्यों के निवेदन पर ठहर कर एक भूले भाई को वैदिक-धर्म की सचाइयों का उपदेश करके मुसलमान होने से बचाया। १८ जनवरी को लाला मूसा में व्याख्यान देकर १९ जनवरी को गुजरात में "सद्धर्म की प्राप्ति" विषय पर एक व्याख्यान दिया और फिर घर जाकर अपनी धर्म-पत्नी जी को साथ ले सीधे लाहौर में स्थित हुए।

इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम जी की प्रेरणा पर जो मैंने वेद भाष्य की रक्षा विषयक लेख प्रचारक में लिखे थे, उन का परिणाम निकल आया। यह पण्डित लेखराम ने ही पता लगाया था कि ऋषि दयानन्द के वेद-भाष्य का आर्य्य-भाषा में अनुवाद करते हुए ब्राह्मण कुलोत्पन्न पण्डित अपने सिद्धान्त बीच में घुसेड़ कर भाष्य को सन्दिग्ध बना रहे हैं। परोपकारिणी सभा ने यह निश्चय मुद्रित कराया कि "महर्षि दयानन्द कृत

पुस्तकों के शोधने के लिए पण्डित लेखराम जी को लिखा जावे कि वह अशुद्धियां छांट कर वैदिक-यन्त्रालय के अधिष्ठाता के पास लिख भेजें।"

लाहौर में स्थित होकर पण्डित लेखराम ने जीवन चरित्र का लेख कातिब (लेखक) के हाथ में देना शुरू तो कर दिया परन्तु फिर भी एक ओर लगकर काम करना उन्हें वहां भी न मिला। ९ फरवरी १८९५ के दिन हम उन्हें अपने देश की आवश्यकता पर मन्टगुमरी में व्याख्यान देते पाते हैं और फिर १० फरवरी को गुजरांवाला में "हमारी मौजूदा तहक़ीक़ात" पर प्रकाश डालते देखते हैं। कारण वही मांस-भक्षण का झगड़ा था। जहां कहीं कालिज दल के आदमी समाज को अपनी ओर खींचने जाते वहीं पण्डित लेखराम को भेजना पड़ता।

परन्तु केवल सभा के अधिकारी ही ऋषि जीवन की तय्यारी में बाधा डालने वाले नहीं समझे जा सक्ते; स्वयम् पण्डित लेखराम का भी इसमें बड़ा भारी हाथ होता था। मन्टगुमरी और गुजरांवाला जाने का हाल मुझे भेजते हुए आर्यपथिक अपने १४ फरवरी, १८९५ के पत्र में लिखते हैं—"अब भिवानी स्यालकोट, कराची, होशियारपुर के जलसे समीप आगए। आपने क्या सलाह की है। आप समेत ८ महाशय जाने वाले हैं। उन में से ४ स्यालकोट और ४ भिवानी चले जावें। मैं और पंडित कृपाराम जी दोनों, लाभचन्द्र (भजनीक) समेत, होशियारपुर को भुगत लेंगे। बतलाइए अब क्या

आज्ञा है ? जिन जिन (महाशय) को जिस स्थान में भेजना है, आप भली प्रकार सोच विचार कर, शीघ्र सब को सूचित कर दीजिए जिस से ठीक समय पर काम हो"

ऊपर का उद्धृत लेख स्पष्ट सिद्ध करता है कि जिस प्रकार पं० लेखराम पेशावर आर्य-समाज के प्रबन्धकर्त्ता बने हुए थे उस से भी बढ़कर उन्हें दिन रात आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब की चिन्ता रहती थी; परन्तु यश और कीर्ति का लेश-मात्र भी लालच उन्हें न था। होशियारपुर न जाकर २३, २४ फरवरी को भिवानी आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए जहां व्याख्यानों के अतिरिक्त धर्म-चर्चा में भी विशेष भाग लिया।

भिवानी से पण्डित लेखराम सीधे कर्णाल आर्य-समाज के जलसे पर पहुंचे और उसी स्थान में उन के साथ मैं भी शामिल हो कर २७ से २६ मार्च तक काम करता रहा। शंका-समाधान का तो अधिक बोझ पंडित लेखराम पर रहता ही था, परन्तु कर्णाल के इस वार्षिकोत्सव पर जो दो व्याख्यान उन्होंने दिए उन्होंने हिन्दुओं के मुर्दातनों में भी जीवन फूंक दिया। पतितों के उद्धार और आर्य-जाति के भविष्य पर ऐसे बल-वर्धक व्याख्यान मैंने पहले नहीं सुने थे।

इसी वर्ष चिरकाल से सोया हुआ दिल्ली आर्य्य समाज जाग उठा था और ३० मार्च, १८६५ से उन के वार्षिकोत्स का आरम्भ था। इस वार्षिकोत्सव में भी पंडित लेखराम मेरे साथ

ही कर्णाल से चल कर सम्मिलित हुए थे । दिल्ली नगर में हमारा पहला नगरकीर्तन था इस लिए दिल्ली वाले हमारी भजन मण्डलियों को भी तमाशे वालों का विज्ञापन ही समझे। तब हमारे उपदेशकों ने भजनों के पश्चात् ऊंचे मूढ़ों पर खड़े हो कर व्याख्यान आरम्भ कर दिए। इस नगर प्रचार में पंडित लेखराम ने बड़ा काम किया। जब चांदनीचौक में छुन्नामल वालों के मकान के नीचे पंडित लेखराम ने अपनी वक्तृता आरम्भ कीतो दो हज़ार से कम की भीड़ भाड़ न थी।

पंडित लेखराम के व्याख्यानों में महम्मदी लोग बहुत आते थे। बाहर से चाहे कुछ भाव लेकर आते परन्तु आर्य्य पथिक की आस्तिकता पूर्ण युक्तियां सुन कर "सुभानऽल्ला" और "बारकऽल्ला" के ही "नारे बलन्द" होते और दाढ़ी वाले सिर और गर्दनें चारों ओर हिलती दिखाई देतीं।

अभी लाहौर पहुंच कर जीवन-चरित्र का कार्य फिर से आरम्भ किया ही था कि सियालकोट से एक सिक्ख रिसाले के सवारों के डांवाडोल होने के समाचार पहुंचे। पंडित लेखराम उसी समय सियालकोट पहुंचे और बड़े प्रेम से अपने सिक्ख भाइयों को धर्म का महत्व समझाया। तीन दिन तक महम्मदी-मत खन्डन में आर्य्य-पथिक के प्रबल व्याख्यान होते रहे जिस का परिणाम यह हुआ कि सैकड़ों ख़ालसे मुसलमान होने से बच गए।

१३ अप्रैल, १८६५ के प्रातः काल मेरे साथ पंडित लेखराम जी मालेरकोटला आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मि-

लित हुए । यहां की कुछ मनोरञ्जक घटनाएं वर्णन करने के योग्य हैं । (१) मुसलमानी रियासत होने के कारण पंडित लेखराम के पहुंच ने की धूम मचगई । मद्धयानोत्तर का समय धर्म-चर्चा के लिए निश्चित था । एक सभ्य मुसलमान सज्जन, मुंशी अबदुल्लतीफ़ नामी, ने पुनर्जनन्म पर कुछ प्रश्न किए जिन का उ-त्तर पंडित कृपाराम देते रहे, परन्तु मुंशीसाहब प्रश्नोत्तर के पश्चात् केवल यह कह देते कि उन की तसल्ली नहीं हुई । जब तीन चार बार ऐसा ही हुआ तो मैंने पंडित कृपाराम जी का आशय उन को समझाना चाहा । इस पर वह बहुत बिगड़े । फिर भी जब दो तीन बार मैं प्रबन्ध के लिए उठा तो मुन्शी साहब ने रोक कर कहा—"आप कौन हो जो बार बार प्र-बन्ध के लिए उठते हो । " मैंने उत्तर दिया कि मैं स्थानिक प्रधान की आज्ञा से प्रबन्ध कर रहा हूं । जब इस पर मुन्शी साहब को विश्वास न आया तो प्रधान स्थानीय आर्य्य-समाज ने मेरे कथन का समर्थन किया, और मैंने कहा कि मैं प-ञ्जाब आर्य्य-प्रतिनिधि-सभा का भी प्रधान हूं इस लिए प्रबन्ध में दख़ल दे सक्ता हूं । मुन्शी साहब इस पर बोले—" आप का नाम किसी प्रति-निधि के ताल्लुक़ (सम्बन्ध) में, किसी अख़बार में, ख़सूसियत से (विशेषतः) सद्धर्म्म-प्रचारक में भी, कभी नहीं पढ़ा । आप प्रतिनिधि के हरगिज़ प्रधान नहीं हैं ।" तब तो मुझे कुछ असलियत खटकी और मैंने पूछा—" क्या आप मेरा नाम भी जानते हैं ? " मुन्शी अबदुल्लतीफ़ साहब ने फ़रमाया—" ख़ूब जानता हूं । आप पंडत (पंडित) लेखराम साहेब हैं । " इस पर श्रोता-गण खिलखिला कर हंस

पड़े और मुझे पता लगा कि पंजाबी लोकोक्ति ठीक है—

" नामी-शाह खट्ट-खाय , बदनाम चोर मारा जाय।"

पंडित लेखराम के व्याख्यान तो मुन्शी साहब ने सुने ही, परन्तु मेरे व्याख्यान के पश्चात् मेरे हाथ में ५) इस लिए दिए कि मैं जिस शुभ कार्य्य में उसे व्यय करना चाहूं करदूं। (२) दूसरी मनोरंजक घटना रात को हुई। म दस बारह दिनों से दिन रात काम करता आया था,इस लिए एकान्त में जाकर सो गया। एक घंटे के पश्चात् ही दो भाई मेरे पैर दबाने लगे। मैं उठ खड़ा हुआ। क्षमा मांग कर उन भाइयों ने कहा कि अनर्थ होने लगा है, शीघ्र चलिए। मुसलमानी रियासत और हमारे मना करते २ पंडित लेखराम ने मुसलमानों से मुबाहसा शुरू कर दिया है! मैं भागा हुआ पंडित लेखराम की ओर चल दिया। वहां क्या देखता हूं कि चार पांच मुसलमानों के बीच में बैठे पंडित लेखराम ने एक मुसलमान युवक का हाथ अपने हाथ में लिया हुआ है और दूसरा हाथ उस की जांघ पर रख रख कर उसे प्रेम से कुछ समझा रहे हैं, और युवक कह रहा है—" यह हवाला तो, पंडित जी, आपने कुरान शरीफ़ में से निकाल ही दिया। अब तो अपने मौलवी साहब से फिर पूछ कर आऊंगा।" परन्तु पंडित लेखराम ऐसी जल्दी कब जाने देते थे। बोले—" मैं तो मुसाफ़िर हूं, न जाने फिर मिलना हो वा नहीं। मेरा आशय तो सुन लो।" फिर आध घंटे तक वैदिक-धर्म की श्रेष्ठता जतला कर उन सब

मुसलमान भाइयों को बड़े प्रेम से विदा किया। जब मुसलमान विदा हो चुके, और पंडित लेखराम को मेरे आने का कारण ज्ञात हुआ,तो स्थानीय आर्य्य-समाजियों से कहने लगे—"तुम बड़े बोदे हो। क्या मैं तुम सों के भरोसे पर धर्म का प्रचार कर रहा हूं? ईश्वर जानता है, तुम से अविश्वासी नास्तकों से तो निमाज़ी मुसलमान हज़ार दर्जे बेहतर हैं।"

(३) फिर जब मैं १४ अप्रैल की रात को शिक्रम में बैठने लगा तो तीसरी मनोरंजक घटना हुई। आर्य्य पुरुष चाहते थे कि पण्डित लेखराम मेरे साथ ही विदा हो जायं, इस लिए मेरी शिक्रम को ठहरा लिया (क्योंकि उन दिनों मलेरकोटले को रेल नहीं जाती थी) और पंडित लेखराम को कहा कि मैं उन के लिये ठहरा हुआ हूं। आर्य्य-पथिक बिना बिस्तरादि लिए आए और पूछा—"क्या आप मुझे ज़बरदस्ती साथ लेजाना चाहते हैं।" स्थानीय अधिकारियों की दशा का ध्यान कर के मैंने कहा—"चलिए तो अच्छा ही है।" पंडित जी के लबफड़कने लगे—"मैं सब कुछ समझ गया हूं। आप मुझे आज से सभा का नौकर न समझिए। ईश्वर जानता है, ये लोग आर्य्य नहीं हैं। क्या मैं इन बुज़दिलों को खुश करने के लिए मैदान से भाग जाऊं। मैं सराय में डेरा कर के यहीं रहूंगा" मैं तो खिलखिला कर हंसा और पंडित जी को नमस्ते कह कर शिक्रम चलवादी और मलेरकोटले के आर्य्य-समाजी लज्जित हो कर आर्य्य-पथिक की सेवा सुश्रूषा में सन्नद्ध हुए।

मलेरकोटले से लौटने के पश्चात् पण्डित लेखराम के रोपड़ आर्य्य-समाज के जलसे में, २७ अप्रैल को, सम्मिलित होने का पता लगता है, जहां उनके दो व्याख्यान हुए थे।

इन्हीं दिनों प्रीतमदेव शर्मा की न्याई उदासी साधु बालकराम ने भी पंजाब का दौरा शुरू किया था और जिस प्रकार प्रीतमदेव, केशवानन्दादि ने स्वामी दयानन्द और आर्य्य-समाज को गालियां देना ही धनसञ्चय करने का साधन समझा था वैसा ही बालकराम ने भी अमल शुरू किया। इस लिए पंडित लेखराम को इस के मुक़ाबिले में कई जगह जाना पड़ा था। मास मई, १८६५ के आरम्भ में उदासी बालकराम भेरे में था, इस लिए पंडित लेखराम ने वहां पहुंच कर बराबर तीन व्याख्यान दिए। यद्यपि शास्त्रार्थ के लिए बालकराम जी तय्यार न हुए तथापि भेरा आर्य्य-समाज का वार्षिकोत्सव २४, २५, २६ मई १८६५ के लिए नियत हो गया।

पुत्रोत्पत्ति का आनन्द

पंडित लेखराम के घर में सन्तानोत्पत्ति की आशा थी, इस लिए वह १५ मई, १८६५ को लाहौर से अपनी धर्म-पत्नी को साथ ले कर अपने घर कहूटे में पहुंचे, जहां १८ मई शनिवार के दिन प्रातः ६ और १० बजे के बीच में उन के यहां पुत्र उत्पन्न हुआ। बच्चे का नाम-करण संस्कार वैदिक रीति से कर के, २२ मई को आर्य्य-पथिक ने फिर यात्रा आरम्भ करदी। ३६ वर्ष की आयु में विवाह कर के जब पुत्र उत्पन्न

हो तो उस के आनन्द में एक साधारण पुरुष सब कुछ भूल जाता है,परन्तु यहां तो अपने पत्र द्वारा मन्त्री जी से प्रतिज्ञा कर चुके थे कि गूजरखां और तरकी में विशेष कार्यों के लिए २३ और २४ मई को ठहरते हुए २५ को भेरा आर्य्य-समाज के उत्सव में सम्मिलित हो जायंगे। और ऐसा ही किया भी।

भेरा आर्य्य-समाज के इस वार्षिकोत्सव में मैं भी सम्मिलित था। पंडित लेखराम जी अपने पुरुषार्थ को सफल देख कर गद गद हो रहे थे। साधु वालकराम को भी निमन्त्रण भेजा गया परन्तु वह आ कर अपनी अप्रतिष्ठा कब कराता था! यहां आप के एक व्याख्यान का विषय था "आजकल के नौजवान (युवक) और उन की हिम्मत"। इस व्याख्यान में आर्य्य-पथिक ने कहा—"जो युवक व्यायाम नहीं करते वे खा कर कुछ पचा नहीं सक्ते और जब काफ़ी भोजन नहीं खाते तो बल कहां से आवे। देखो हस्पताल के बीमारों की खुराक गवर्मेन्ट की ओर से यह नियत है—आटा आधसेर, दाल एक पाव, घी एक छटांक, चावल आध पाव। हमारे युवक हस्पताल के बीमारों से भी बद्तर हैं कि दो तीन फुलकियां खा कर उठ खड़े होते हैं।" पण्डित लेखराम जी के व्याख्यान का यह भाग उन के सब साथियों और नगर निवासियों को भी कन्ठ हो गया था। २७ के प्रातः हम सब भेरा से चले और ७½ बजे लाला मूसा में पहुंच कर स्नान सन्ध्यादि सारी जमात ने किया। लग-भग ६ वा ७ उपदेशक थे। भोजन बनवाने का काम पण्डित लेखराम ने अपने ज़िम्मे लिया। जब भाजी आदि के

साथ आटे की पूरियां ला कर रक्खी गईं तो आध सेर आटे वाला मामला सब को हंसाता रहा। भोजन के समय आर्य्य-पथिक सब को टोकते जाते थे परन्तु मेरे साथ उनका सन्मुख्य हो गया। दो पूरियां उन्हें दी जातीं तो दो ही मुझे। इस प्रकार जब सब हार गए और हम दोनों भी सत्रह सत्रह पूरियां खा चुके तो पंडित जी ने हाथ धो लिए और मैंने दो और लेकर बस की। तब पंडित जी बोले—"लाला जी! मैं तो आप को रईसों में ही शुमार करता था। आप ने तो ग़ज़ब कर दिया।"

पंडित लेखराम वैसे तो बड़ी टेढ़ी प्रकृति के दिखाई देते थे, परन्तु थे बड़े ही हंस मुख और सरल हृदय; वह नहीं सहन कर सक्ते थे तो मक्कारी और झूठ को। भोजन के पश्चात् पुत्रोत्पति के लक्ष में पंडित लेखराम से सह-भोज मांगा गया। पंडित जी ने उस समय के सारे भोजन का व्यय अपने पास से देकर सब को प्रसन्न कर दिया।

ऋषिजीवन के काम में रुकावट।

भेरे से लौट कर पंडित लेखराम ने अभी जीवन चरित्र के काम को हाथ ही लगाया था कि फिर उन के लिए मांग कोटे से आई। इधर तो यह हाल और उधर जीवन चरित्र का मसाला पड़ताल कराने के लिए अन्तरङ्ग सभा ने प्रत्येक लेख की तीन प्रतियां तय्यार करने का प्रस्ताव स्वीकार किया। पंडित लेखराम भी ऐसी अवस्था में बड़े तङ्ग आजाते थे।

सभा के मन्त्री के नाम जो पत्र १७ मई को उन्हों ने कहूटे से लिखा उस में दर्ज था —"आर्य्य-प्रतिनिधि-सभा के गत दो अधिवेशनों में लाला मुन्शीराम के, विशेष आवश्यकताओं के कारण, न सम्मिलित होने से काम पूर्ण न हुआ। जो रेज़ोल्यूशन पास हुए हैं मैं उन के साथ सहमत नहीं हूं। तीन कापियां कराने में दो तीन सौ रुपए मुफ़ में फ़ालतू खर्च होंगे...... एक कापी का होना तो ज़रूरी है किन्तु एक से अधिक नहीं, उस से केवल व्यय ही बढ़ेगा। आप जानते हैं कि मैं यात्रा में, और विशेषतः उपदेश के लिए यात्रा में जीवनचरित्र का काम बिल्कुल नहीं कर सक्ता। और यात्रा की असावधानता में पत्रों के गुम हो जाने का भी सन्देह रहता है। अब मैं सब पत्र लाला जीवनदास के मकान पर ताले में बन्द कर आया हूं, साथ नहीं लाया।"

आर्य्य-पथिक के ऊपर लिखित दृढ़ प्रतिषेध करने पर भी उन्हें क्वेटे की ओर जाने की आज्ञा मिली। तदानुसार वह ८ जून १८६५ को लाहौर से चल कर मन्टगुमरी पहुंचे जहां उन्होंने दो व्याख्यान दिए। १३ जून को सीबी पहुंच कर व्याख्यान दिया और १४ को क्वेटे पहुंच गए। १६ और १८ जून को दो व्याख्यान देने के पश्चात् जुलाई के अन्तिम सप्ताह में आर्य्य समाज का वार्षिकोत्सव रखवाया।

इन्हीं दिनों मेरठ से पंडित लेखराम को एक पत्र, जालन्धर से घूमता हुआ, क्वेटे में पहुंचा जिस में लिखा था कि एक हिन्दू सभ्य मुसलमान हो चुका है और दूसरा होने वाला

है—और पंडित लेखराम से सहायता चाही थी। कोटे से विना आज्ञा मेरठ जाना कठिन था परन्तु पण्डित लेखराम के अन्दर कैसा आत्मा काम करता था उस का पता उनके पत्र से लगता है—"लाला मुन्शीराम जी को तार दी है कि इस का स्वयम् प्रबन्ध करें या जैसी आज्ञा हो लिखें तो उस का पालन करूंगा। आप भी उन से पूछ लें कि क्या बन्दोबस्त किया?"

इधर तो आर्य्य-समाज कोटा का वार्षिकोत्सव नियत कराया और उस से पहले धर्म-प्रचार का सिलसिला जमाया और उधर घर से बड़ा शोक जनक समाचार मिला। जब पंडित लेखराम घर पर छुट्टी लेकर गए थे उन्हीं दिनों उन का भाई, तोताराम, बीमारी के बिस्तरे से उठा था, परन्तु निर्वल अधिक था। कोटे में चचा का पत्र पहुंचा कि १२ जून को भाई का देहान्त हो गया। इस पर १ जुलाई को जो पत्र, कोटे से, पं० लेखराम ने सभा के मन्त्री जी को लिखा वह उन के मानसिक भावों को बड़ी उत्तमता से प्रकट करता है?—"मेरा छोटा भाई तोताराम १२ जून को मर गया परन्तु घर वालों ने मुझे कुछ समय तक सूचित न किया। कल पेशावर से मेरे चचा का पत्र आया जिस से हाल मालूम हुआ। हैरान हूं कि क्या करूं। इधर समाज को काम-उधर गृह की आपत्ति-हैरानी पर हैरानी है। यदि यहां से काम छोड़कर चला जाता हूं तो अपने समाज को हानि पहुंचती है और वहां भी बहुत सा हर्ज है। लाचार मैंने आज ही घर पत्र लिखा

है कि यदि वे मुझे आज्ञा दें तो जुलाई के अन्त तक क्वेटे रहूं, नहीं तो पत्र आने पर आप को सूचना दूंगा।"

मालूम होता है कि घर वालों ने, पडित लेखराम का अपनी धार्मिक संस्था से असीम प्रेम देख कर, फिर उन्हें तङ्ग नहीं किया क्योंकि क्वेटे में दो और व्याख्यान देकर हम उन्हें बलोचिस्तान का दौरा करते पाते हैं। २ जुलाई १८९५ को क्वेटे से चलकर बोलान, दोज़ान, कोलपुर, हिरक, चतरज़ई, पनीरबन्द आदि में प्रचार, और वेद प्रचारनिधि के लिए धन एकत्र, करते क्वेटे में लौट आए। फिर क्वेटा आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव से पहले दो व्याख्यान देकर नगर-निवासियों को तय्यार किया और वार्षिकोत्सव में दो व्याख्यान देकर लौट पड़े।

परन्तु क्या पण्डित लेखराम भाई के मरने से १ महीना १० दिनों के पश्चात् घर लौटे? दीना नगर से तार आया था कि मुसलमानों के साथ शास्त्रार्थ ठन गया है, तब आर्य्य-पथिक घर कैसे जाते? ३० जुलाई को क्वेटे से चलकर ३१ जुलाई को रुक जंकशन स्टेशन पर प्रातः १० बजे "ईश्वर प्राप्ति" विषय पर व्याख्यान दिया और फिर सीधे चलकर प्रथम अगस्त की रात को दीना नगर रेलवे स्टेशन पर पहुंच गए। यहां मौलवी अकबर अली और मौलवी चिरागुद्दीन, महम्मदी मत के प्रचारक, पहले से जमे हुए थे परन्तु शास्त्रार्थ के लिए सामने न आए। तब २ अगस्त से आरम्भ करके मौलवियों के मुक़ाबिले में ३ ज़बरदस्त व्याख्यान दिए, और जनता के आग्रह पर फिर तीन दिन और ठहर कर "वैदिक-धर्म की श्रेष्ठता"

"सन्ध्या की आवश्यकता" और "सचाई का मज़बूत चट्टान" विषयों पर बड़े सार-गर्भित व्याख्यान दिए। इनका प्रभाव उस समय के स्थानिक मंत्री जी इस प्रकार वर्णन करते हैं—"किसी वार्षिकोत्सव में इतनी जन संख्या उपस्थित नहीं हुई और पं० (लेखराम) जी के व्याख्यानों से लोगों के हृदयों में जो सहानुभूति आर्य्य-समाज के साथ उत्पन्न हुई है, उसका भी पहला ही अवसर है।............पं० जी के व्याख्यानों के पश्चात् यहां सन्ध्या पुस्तकों की बड़ी मांग हो रही है। जहां तक मेरा ख़्याल है कोई भी आर्य्य-समाज का मेम्बर और धर्मात्मा हिन्दू न होगा जो अब भी दो घन्टे व्यय कर के दो काल सन्ध्योपासना न करेगा।"

८ अगस्त को अमृतसर पहुंच कर आर्य्य-पथिक ने "धर्म के मज़बूत चट्टान" विषय पर व्याख्यान दिया और ६ अगस्त को "सत्य के श्रोत" विषय पर। यहां पर ही मुरादाबाद की तार के साथ प्रधान आर्य-प्रतिनिधि की भी आज्ञा पहुंची कि मुरादाबाद में जाकर एक भाई को ईसाई मत के फन्दे से बचा लाइए। आर्य-पथिक विना किसी ननुनच के मुरादाबाद चल दिए। खन्ना (ज़िला लुधियाना का श्रीराम सारस्वत ब्राह्मण ईसाई हो चुका था जिस को वैदिक-धर्म का अनुयायी बनाया और प्रायश्चित के पश्चात् नगर कीर्तन करते हुए उसे आर्य-समाज मन्दिर मुरादाबाद में लाकर ५००पुरुषों की उपस्थिति में शुद्ध किया, और सब भाइयों ने श्रीराम के साथ खान-पानका व्यवहार आरम्भ कर दिया। उन दिनों सनातन धर्म सभा में आलाराम

सागर लोगों को आर्य-समाज के विरुद्ध भड़का रहा था परन्तु ११ से १५ अगस्त तक पांच प्रवल व्याख्यान देकर आर्य-पथिक ने हिन्दू मात्र को अपने साथ कर लिया और फिर अम्बाले का तार आने पर वहां को चल दिए। यहां पर ईसाईयों ने कुछ शोर मचाया हुआ था जिन के मुक़ाबिले में पं० लेखराम जी के व्याख्यान बड़े प्रभावशाली हुए और सर्व साधारण को ईसाई मत की निर्वलताओं का परिज्ञान हुआ।

अम्बाला छावनी में जिस काम के लिए आए थे उसे कर के २३ अगस्त को शिमला आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। शिमला में पंडित लेखराम के तीन व्याख्यान हुए। जिनमें से अन्तिम व्याख्यान टाउन हाल (Town Hall) में आर्य्य-समाज के नियमों पर हुआ। इस व्यायाम से प्रभावित होकर बहुत से नए सज्जन आर्य्य-समाज के सभासद तथा सहायक बने।

शिमले से लौटते हुए पं० लेखराम को वर्षा में भी भीगते आना पड़ा और अम्बाला में भी बादल न खुले। वहां अभी कपड़े सुखाने का बन्दोबस्त करने ही लगे थे और एक व्याख्यान भी दे चुके थे कि मेरा तार पहुंचा और आर्य-पथिक सीधे जालन्धर पहुंच गए। तीसरे पहर रेल से उतरते ही मेरे पास आए। मैंने उन को कष्ट देने का कारण बतलाया। धर्मशाला पर्वत के आर्य्य-समाज का वार्षिकोत्सव था और उसी समय कालिज पार्टी ने भी उत्सव मनाना निश्चित किया।

जहां उधर से बड़े बड़े प्रसिद्ध उपदेशक, लीडर और राय सा-हबान जाने वाले थे वहां हमारी ओर से लाभचन्द्र भजनीक को लेकर अकेले पं० कृपाराम जी पहुंचे हुए थे। उस स्थान में पं० लेखराम को भेजने का विचार था। २६ अगस्त को पं० लेखराम मेरे पास पहुंचे और धर्मशाला में ३१ अगस्त को नगर कीर्तन था; यदि दूसरे दिन प्रातःकाल ही चल देते तो धर्मशाला आर्य्य-समाज के सभासदों के डांवाडोल हृदयों का शान्ति मिल सक्ती थी।

मेरी सारी कहानी सुनकर पंडित लेखराम बोले "यह देखिए! लगातार सफ़र में सारे कपड़े मैले होगए, कहीं धुलाने का समय नहीं मिला। फिर शिमले से आते हुए उन मैले कपड़ों में से भी एक सूखा नहीं बचा। मुझे परसों से ज्वर आता है और ज़ुकाम साथ हैं। बतलाइए! मैं जाने की अवस्था में हूं?" मेरी आंखों से अश्रुधारा बहने लगीं और मैंने कहा—"पं० जी! आप अब आराम कीजिए, धर्मशाला का विचार छोड़ दीजिए। वहां का भुगतान हो जायगा।" इतना कहकर मैंने पं० ज़ी को उनके निश्चित कमरे में उतारा और कपड़े सु-खाने के लिए अङ्गीठी जलवादी, क्योंकि उन दिनों व्यापक झड़ी लगी हुई थी। पं० लेखराम को भोजन कराके मैं अपने काम में लग गया और फिर उस रात उन्हें न मिला।

दूसरे दिन प्रातः मुक़द्दमों को प्रबन्ध कर के मैं जाने की तय्यारी करने लगा था कि पं० लेखराम कपड़ों का बेग बाहर

रख कर मेरे बरामदे में पहुंचे और मुझे अन्दर से बुलवाया। जब मैं बाहर पहुंचा तो क्या देखता हूं कि पाजामा,कोट पहिने पगड़ी का शमला छोड़े कमरकी पेटी हाथमें लिए आर्य्यपथिक यात्रा को तय्यार खड़े हैं। मुझे देखते ही बोले—"लाला जी! २०) रुपये मार्ग व्यय के लिए मंगा दीजिए और अपने दो नए कुर्ते भी। ऊपरी सफ़ाई की मुझे परवा नहीं लेकिन शरीर से सटा हुआ तो शुद्ध वस्त्र ही होना चाहिए।"

मैं आर्य-पथिक की ओर आश्चर्य्य से देखने लगा और पूछा· "क्या घर से कोई तार आया है।" उत्तर मिला—"घर की मुझे कब परवा है। वहीं धर्मशाला जाता हूं। क्या किया जाय। जाना ही पड़ेगा।" मैंने बतलाया कि मध्यानोत्तर की रेल में मैं चला जाऊंगा वह कष्ट न उठावें। परिडत लेखराम, प्रसिद्ध कटु भाषी पंडित लेखराम, प्रेम से सनी हुई वाणी में बोले—"लाला जी! आप का यहां से हिलना बड़ा हानिकारक होगा। आप के ही बल से तो हम सब काम करते हैं। यदि ऐसी छोटी बातों के लिए आप को कष्ट दें तो हम किस मर्ज़ की दवा हैं। लीजिए! जल्दी रुपया मंगाइए, रेल का समय समीप आ रहा है।"

इस दृश्य को स्मरण कर के अब भी मेरी आंखों में आंसू भर आए हैं। आज आर्य्य-समाज की अवस्था पुकार २ कर चिल्ला रही है—लेखराम! हा! धर्म-वीर, कर्तव्य-परायण लेखराम!!"

रुपए अन्दर से आए, पेटी की बांसली में डाले गए और आर्य्य-पथिक घोड़ा-गाड़ी की भी प्रतीक्षा न कर के रेलवे स्टेशन की ओर चल दिए।

धर्म्म-शाला में अकेले लेखराम ने सच मुच सवा-लाख का काम किया। सनातनी ब्रह्मानन्द भारती ने नियोग की आड़ ले कर आर्य्य-समाज और उस के प्रवर्तक को बहुत कुछ कोसा था। उस के मुक़ाबिले में महात्मा हंसराज जी ने पहले से व्याख्यान दिए थे और नवीन वेदान्त मत का खन्डन भी किया था परन्तु भारती का प्रभाव न मिटा। तब पंडित लेखराम ने भारती जी को शास्त्रार्थ का घोषणा-पत्र भेजा। शास्त्रार्थ से तो वह बच गया परन्तु पण्डित लेखराम ने, विज्ञापन दे कर, नवीन वेदान्त मत खन्डन और वेदोक्त नियोग के मन्डन विषय पर २ सितम्बर की रात को बड़ा शक्ति-शाली व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान में स्वामी ब्रह्मानन्द भारती और महात्मा हंसराज जी के अतिरिक्त धर्मशाला में उपस्थित सब सज्जन विद्यमान देखे गए। पण्डित लेखराम में एक बड़ा गुण था कि वह विरोधी की वक्तृता को स्वयम् सुन आते थे। इस लिए उन के व्याख्यान टाले नहीं जा सक्ते थे। इस व्याख्यान ने भारती की सारी लीला को समाप्त कर दिया और जो कल्चर्ड महाशय पंडित लेखराम को लठ्ठ-बाज़ और पेशावरी गुण्डा कह और लिख कर आर्य्य-पथिक से घृणा का भाव प्रकट किया करते थे उन्हों ने भी इस अपूर्व वक्तृता पर समय समय पर हर्ष प्रकट कर के अपने विरोधी विचारों का प्रायश्चित्त किया।

धर्मशाला से लौटते हुए पंडित लेखराम ने पठानकोट आर्य्य-समाज मन्दिर में "ईसाईमत खन्डन" पर एक व्याख्यान दिया, जिस की वहां आवश्यकता बतलाई जाती थी और वहां से "वेद-प्रचार निधि" के लिए धन भी एकत्र करलाए।

इस के पश्चात् भी कुछ थोड़ा ही काम ऋषि-जीवन सम्बन्धी कर पाए होंगे क्योंकि हम उन्हें गुजरातादि आर्य्य-समाजों में भ्रमण करते हुए देखते है। फिर मन्टगुमरी में प्रचार कर के अक्टूबर मास में ऐबटाबाद में प्रचार करने के अतिरिक्त रावलपिण्डी और अमृतसर आर्य्य-समाजों के जलसों में उन का सम्मिलित होना पाया जाता है।

अमृतसर आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव से निवृत्त होकर पंडित लेखराम ने लाहौर में तीन व्याख्यान दिए, जिन में "ब्राह्मसमाज के इतिहास" पर दृष्टि डालते हुए जो व्याख्यान हुआ वह बड़ा ही आन्दोलन पूर्ण था। लाहौर से चल कर ३ नवम्बर को मुलतान पहुंचे जहां ५ नवम्बर तक तीन व्याख्यान दिए। ६ नवम्बर को आराम कर के ७ को डेरागाज़ीखां पहुंचे जहां उन्होंने उसी सायंकाल के समय "धर्म की आवश्यकता" पर व्याख्यान दिया। फिर १० नवम्बर तक तीन और व्याख्यान देकर ११ नवम्बर को मुज़फ्फ़रगढ़ पहुंचे। वहां दो व्याख्यान दे और करोड़ आर्य्य-समाज में प्रचार कर के लाहौर लौट गए।

जीवनचरित्र का थोड़ा ही काम कर सके थे कि लाहौर आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में भाग लेना पड़ा। नगरकीर्तन के समय नगर-प्रचार के अतिरिक्त १ दिसम्बर १८९५ को वार्षिकोत्सव का अन्तिम व्याख्यान दिया जिस में सब से अधिक जन संख्या थी। व्याख्यान पर श्रोता-गण इतने मोहित हुए कि समय समाप्त होने के एक घन्टा पीछे तक बरांबर जम कर बैठे रहे।

इन्हीं दिनों आर्य्य-पथिक का सब से बड़ा ग्रन्थ "पुनर्जन्म" विषय पर छप कर तय्यार हो गया और आर्य्य-जनता-मात्र ने उस का बड़े आदर से सत्कार किया।

लाहौर के उत्सव के पश्चात् फिर ज़ीवन-चरित्र का कार्य्य आरम्भ किया था कि आर्य्य-पथिक के लिए पुनः गांग आने लगी। ८ दिसम्बर को उन का व्याख्यान लुधियाना नगर में हुआ। १० को माछीवाड़ा ग्राम में धर्म-प्रचार कर के १२ दिसम्बर, १८९५ को रोपड़ पहुंचे जहां १३ तक दो व्याख्यान दिए। मूर्त्ति-पूजा विषय पर पौराणिक पण्डितों से यहां शास्त्रार्थ भी हुआ।

कहां रोपड़ और कहां शरक़पुर! दोनों रेलवे लाइन से दूर—परन्तु हम १५ और १६ दिसम्बर को उन्हें शक़रपुर (ज़िला लाहौर) में व्याख्यान देते देखते हैं।

इस वर्ष का दौरा भी गत वर्षानुसार जालन्धर आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर ही समाप्त हुआ, और वहां से ही आर्य-पथिक ने नए वर्ष का कार्य आरम्भ किया।

जनवरी, १८९६ के आरम्भ में ही पटियाला राज में पहुंच कर पांच व्याख्यान दिए। वहां से लाहौर लौट कर जीवन चरित्र में कुछ त्रुटि देख ११ जनवरी, १८९६ को फिर मुलतान में ऋषि जीवन सम्बन्धी आन्दोलन के लिए गए। १९ जनवरी से ३ फ़रवरी तक वहां रहे; इस अन्तर में वहां सात व्याख्यान भी दिए। ४ फ़रवरी को लाहौर लौट कर फिर जीवन चरित्र का काम होने लगा, परन्तु स्थानीय प्रचार भी साथ साथ चलता रहा। ९ फ़रवरी को मियां मीर में और १०तथा ११फ़रवरी को अमृतसर में व्याख्यान दिए। वहांसे चलकर १४ से २४ फ़रवरी तक डेरा-इस्माइलखां आर्य-समाज में रहे जहां उदासी साधु बालकराम ने शोर मचा रक्खा था। यहां बड़ी धूम के व्याख्यान हुए। लौटते हुए २५, २६ फ़रवरी को मुज़फ्फ़रगढ़ में व्याख्यान दिए और २७ फ़रवरी के दिन डेरा ग़ाज़ी खां पहुंच गए। वहां एक पादरी से शास्त्रार्थ कर के नगरकीर्तन कराया जिस में स्वयम् थोड़ी २ दूरी पर व्याख्यान देते रहे और २८ फ़रवरी को फिर ७०० की जनोपस्थिति में आर्य्य-समाज के नियमों पर व्याख्यान दिया जिस की समाप्ति पर १३ नए सभासद् बने।

इसके पश्चात् लाहौर लौटकर जीवन चरित्र की छपाई के साथ साथ स्थानीय प्रचार भी करते रहे। फिर १५ मार्च को कर्णाल पहुंचे जहां नगर कीर्तन में नगर प्रचार करने के अतिरिक्त दो अत्युत्तम व्याख्यान दिए। वहां से १८ मार्च, १८९६ को चल कर १९ को दिल्ली में ' वैदिक-धर्म की श्रेष्ठता" पर व्याख्यान दिया। और वहां से सीधे अजमेर पहुंचकर वहां के आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। वार्षिकोत्सव की कार्य वाही में तो पं० लेखराम के दो बलयुक्त व्याख्यान हुए ही परन्तु नगरकीर्तन में एक ऐसी घटना हुई जिसे अजमेर आर्य्य-समाज के वृद्ध सभासद् अभी तक नहीं भूले हैं।

आर्य्य-पथिक भजन मण्डली के साथ झूमते हुए जा रहे थे, और बीच में कहीं कहीं व्याख्यान भी देते जाते थे। मार्ग में कुछ मुसलमान भाइयों से बात चीत होने लगी। पंडित लेखराम के उत्तर सुन कर कुछ मुसलमान भड़क उठे। "ख़्वाजा चिश्ती"की दर्गाह पास थी,इस लिए आर्य्यसमाजी डर कर भाग गए। अकेला लेखराम-न यार न मदद गार। परन्तुक्या लेखराम ने अपना धर्म प्रचार का काम बन्द कर दिया ? नहीं। कहीं सुना था कि विधर्मी के धर्म-मन्दिर से ३० करम की दूरी पर प्रत्येक धर्म-प्रचारक को अपने मत के समर्थन करने का अधिकार है। आप दर्गाह के द्वार पर पहुंचे। मुसलमान आश्चर्य से इन की क्रिया को देख रहे थे। लेखराम ने दर्गाह

के द्वार से उच्च स्वर में करम गिनने आरम्भ किए और तीसवें करम (पग) पर पहुंच, एक छोटे पुल पर खड़े होकर धर्म-प्रचार शुरू कर दिया । " क़ब्रप्रस्ती " और "मर्दुमपरस्ती" इत्यादि का ज़बरदस्त खन्डन होने लगा। मुल्लाओं ने बहुतेरा भड़काया परन्तु मुसलमान सर्व-साधारण जनता ने (जो एक सहस्र की संख्या में एकत्र हो गई थी) वहदानियत (एक ब्रह्मवाद) की एक २ चोट पर वक्ता के साथ सहानुभूति प्रकट की। उस समय तक आर्य्य-समाजियों को भी होश आ चुका था। चुपके से दो चार देखने गए कि लेखराम पर कैसी बीती, क्या मारा गया वा कहीं भाग कर बच गया । किन्तु उन के आश्चर्य की सीमा न रही जब उन्हों ने प्रचारक के व्याख्यान का प्रभाव अपनी आंखों से देखा और मुसलमान जन साधारण को वक्ता के वशीभूत पाया !

अजमेर से लौट कर पंडित लेखराम ने एक सप्ताह ही जिवन चरित्र का काम किया होगा कि मुस्तफ़ाबाद (ज़िला अम्बाला) के उत्सव के लिए उन की मांग आई। १०, ११, १२ अप्रैल, उस उत्सव में सम्मिलित रहें जिस में साधारण व्याख्यानों के अतिरिक्त दो हिन्दुओ को मुसलमान होने से बचाया। इस के पश्चात् २४ से २६ अप्रैल तक हम पण्डित लेखराम को दीनानगर आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं। ७ जून, १८९६ को जालन्धर आर्य्यसमाज में " आर्यों के जातीय व्यौहार " विषय पर व्याख्यान देना छपा है।

ऐसा मालूम होता है कि इन दिनों विशेष प्रकार से फिर पण्डित लेखराम जालन्धर में स्थित हो गए थे, और अपनी धर्म-पत्नी तथा बच्चे सहित (जिस का नाम सुखदेव रक्खा था) महल्ला " कोट कृष्णचन्द्र " में किराए के मकान में निवास करते थे।

जालन्धर में गृहस्थ जीवन
और
आदर्श ब्राह्मण गृह ।

जालन्धर में ही पंडित लेखराम ने वास्तविक में गृहस्थाश्रम का आरम्भ किया, इसी स्थान पर देवीलक्ष्मी जी की गोद हरी हुई और अन्त को इसी भूमी में पंडित लेखराम को अपने अकौते पुत्र का अन्त्येष्टि संस्कार करना पड़ा, इस लिए उन के गृहस्थ जीवन का पूरा वृत्तान्त इसी स्थान में देना आवश्यक प्रतीत होता है।

पंडित लेखराम जी का मेरे साथ विशेष प्रेम था, इस के बतलाने की आवश्यकता नहीं, फिर भी वह उस समय सारे आर्य्य जगत को एक परिवार समझने लगगए थे और इस लिए उनका किसी स्थान विशेष से प्रेम नहीं रहसक्ता था। परन्तु पंडित लेखराम जी की धर्मपत्नी, श्री मति लक्ष्मीदेवी जी, उस उच्च आदर्श को ग्रहण नहीं कर सकी थीं। उनका मन केवल जालन्धर निवासिनी आर्य्या स्त्रियों से ही मिला हुआ था। लाहौर में वह जब तक रहीं अपने आपको परदेस में समझती रहीं और इस लिए वहां से घर चली गई थीं।

जब पुत्र उत्पन्न हो चुका, उसके पश्चात् स्वभावतः उन्हें भरी गोद लेकर उसी जालन्धर नगर में लौटने का उत्साह हुआ जहां से वह गोद हरी लेकर गई थीं। इसी अन्तर में पंडित

लेखराम का लाहौर में रखना भी कुछ अनावश्यक ही प्रतीत हुआ क्योंकि जीवन चरित्र की तय्यारी में उन को मुझ से अधिक सहायता मिल सक्ती थी। तब यही ठीक समझा गया कि उन्हें लाहौर से जालन्धर आने की आज्ञा दी जावे।

इन्हीं दिनों पं० लेखराम जी के पिता का देहान्त होगया, और इस लिए १६ से २८ मई, १८९६ तक की छुट्टी लेकर वह अपने निवास-स्थान कहूटा को चले गए और वहां से अपनी धर्म-पत्नी और पुत्र को साथ लेकर जालन्धर आगए।

पंडित लेखराम को मैं एक सच्चा ब्राह्मण मानता हूं और उनके गृह को आदर्श ब्राह्मण गृह समझता था क्योंकि वह त्याग का जीवन व्यतीत करते थे। चिरकाल तक उन्हें २५) मासिक वेतन ही मिलता रहा और उसी में वह अपना निर्वाह करते रहे। फिर जब उनका विवाह होगया तो सभा ने स्वयम् उन को ३०) मासिक देना आरम्भ कर दिया; आर्य्य-पथिक ने वेतन वृद्धि के लिए कोई प्रार्थना पत्र नहीं दिया था। फिर जब पंडित लेखराम के घर पुत्र उत्पन्न हुआ और मुझे मालूम हुआ कि उन्होंने "हिन्दू परस्पर सहायक भंडार" में सम्मिलित होने के अतिरिक्त १७ जून १८९५ से "सन् लाइफ़ इन्श्युरेन्स कम्पनी" में अपने जीवन का बीमा करा लिया है, तब मैंने सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित करके उन का वेतन ३५ मासिक करा दिया था। शायद यह समझा जावे कि पंडित लेखराम को अपनी रची हुई पुस्तकों की बिक्री

से अधिक आमदनी होती होगी, परन्तु उन की मृत्यु के पश्चात् उन की पुस्तकों का सारा हिसाब पड़ताल करने से मुझे ज्ञात हुआ कि जब तक आर्य्य-पथिक की पुस्तकों का सारा प्रबन्ध सद्धर्म्म-प्रचारक यन्त्रालय के आधीन (शायद सं० १८९५ में) नहीं हो गया था तब तक उन्हें पुस्तकों से एक कौड़ी का भी लाभ नहीं होता रहा। पण्डित लेखराम के पीछे कइयों ने " आर्य्य-मुसाफ़िर " नाम धराए, और उस के सहारे सहस्रों रुपये कमाए; परन्तु आर्य्य-पथिक ने धन जमा करना अपना उद्देश्य रक्खा ही न था और यदि वह अपने जीवन का बीमा न करा जाते तो देवी लक्ष्मी के पास अपने निर्वाह के लिए शायद थोड़े से आभूषणों के अतिरिक्त कुछ भीं न बचता। और वह बीमे का आया हुआ धन क्या देवी लक्ष्मी ने बर्ता ? सच्चे-ब्राह्मण लेखरान ने अपनी धर्म-पत्नी को भी ब्राह्मणी ही बनाया था और उन्हों।ने बीमा का पूर्ण २०००) रुपया गुरुकुल-कोष में जमा करा के सदा के लिए आर्य्य-पथिक के स्मारक में एक विद्यार्थी पढ़ाने की बुनियाद रख दी। मुझे आशा है कि सच्चे ब्राह्मण-कुल के पवित्र दान से पढ़े हुए ब्रह्मचारी भी त्यागी सच्चे ब्राह्मण ही निकलेंगे।

पण्डित लेखराम प्राचीन ब्राह्मणों की तरह त्याग की मूर्त्ति तो थे, परन्तु इस से यह न समझना चाहिए कि मद्ध कालीन घर्सिया वैराग के वह दास थे। नहीं, प्रत्युत गृहस्थ जीवन का आदर्श भोगने की, उन के कर्मों में सदा, चेष्टा दिखाई देती है। थोड़े से धन से ही पुत्र के पालन और गृहस्थ की रक्षा का

बड़ा उत्तम प्रबन्ध किया करते थे। सुखदेव को गोद में ले कर खिंलाते देख कोई विचार-शील पुरुष नहीं कह सक्ता था कि सच्चे प्रेम का उन में अभाव है। इस के अतिरिक्त कुछ अन्य वैरागी आर्य्यों की तरह वह अपने परिवार से भी उदासीन न रहते थे। परन्तु परिवार के प्रेम में फंस कर अपने सिद्धान्तों से गिर कर आत्म-घाती कभी नहीं बनते थे। इस के प्रमाण में आर्य्य-पथिक का जालन्धर से २४ जून, १८९६ को अपने चचा के नाम लिखा हुआ पत्र काफ़ी है। इस पत्र में पण्डित लेखराम लिखते हैं—"पिता जी के देहान्त का समाचार घर वालों ने मुझे नहीं भेजा था। आप के पत्र से ही पहले पहल मुझे उस की सूचना मिली। मैं ११ वा १२ दिन घर रह कर लौट आया और **लाला साहेब** (पिता जी से तात्पर्य) **तथा तोताराम**—दोनों के मृतक शरीरों की भस्म भी साथ लाया, जो मार्ग में शास्त्र की आज्ञानुसार झेलम नदी में प्रवाह कर दी। मैं अब यहां चार पांच महीने रहूंगा। एक मकान २) मासिक किराए पर लिया हुआ है। स्वामी जी का जीवन-चरित्र यहां साफ़ कर के, फिर छपवाया जावेगा। जब तक यह न छप जाय तब तक यहां ही रहूंगा ....घर में (अर्थात् कहूटे में) अब कोई आदमी नहीं है। सय्यदपुर के मकान का तो अब फ़ैसला ही हो गया, कहूटे के लोगों से आप परिचित ही हैं; बतलाइए अब मकान कहां बनाऊं। आप ने तो रावलपिण्डी में बना लिया, और आप आयु भर वहीं रहेंगे......कोई फूल और कोई कहूटे की सलाह देता है। आर्य्य-सामाजिक भाई प्रत्येक अपने २ शहर में सम्मति देते हैं। मैं चाहता था कि यदि

ऐसा स्थान होता जहां आप भी समीप होते तो उचित था। मुझे यद्यपि अब सारा जगत् ही कुटुम्बवत् दिखाई देता है और अपने सम्बन्धियों के साथ भी जन-साधारण से बढ़ कर प्रेम नहीं रहा तथापि रक्त का सम्बन्ध भी कुछ प्रभाव रखता है। आप जो सम्मति उचित समझें अवश्य लिखें.....................चिरञ्जीव सुखदेव के दांत निकल रहे हैं; छः निकल चुके हैं, इस लिए कभी दस्त आजाते हैं—वैसे वह स्वस्थ है, और उस की माता भी स्वस्थ है।"
इस सम्बन्ध में पण्डित लेखराम की दिन-चर्य्या का समय विभाग, जो उन्हों ने अप्रैल १८९६ ई० की समाप्ति पर लिखा था, बड़ा प्रकाश डालता है:—

(१) "चार घड़ी अर्थात् सवा घन्टा रात रहे उठ कर शौच के लिए जङ्गल में जाना फिर दन्त धावन और स्नान तथा सन्ध्या; और अग्नि-होत्र सूर्य के उदय होने पर। अग्निहोत्र लक्ष्मी जी (आर्य्य-पथिक की धर्म्म-पत्नी जी) कर लिया करें और कभी २ मैं स्वयम् भी कर लिया करूंगा।

प्रत्येक दिन व्यायाम करना, ठीक ४० डण्ड।

(२) वेद पाठ एक घन्टा; कुरान, तौरेत, इन्जील का स्वाध्याय एक घन्टा वा अन्य मतों सम्बन्धी पुस्तकादि। ग्रन्थ निर्माण का कार्य्य ११ वजे तक।

(३) ११ बजे से २ बजे तक—भोजन, विश्राम गृहस्थ के कार्य्यादि और प्यारी लक्ष्मी को पढ़ाना।

(४) ३ से ५ बजे तक पुस्तकावलोकन तथा लेख, विशेषतः ऐतिहासिक विद्या सम्बन्धी।

(५) मलत्याग, शौच, सन्ध्या, भ्रमण, व्याख्यान अर्थात् लोगों को सद्धर्म्म का उपदेश देना। अग्नि-होत्र, भोजन, घर का प्रबन्ध—६ बजे से ६ बजे तक।

(६) अपने संशोधन के सम्बन्ध में विचार। सोने से पहले मुंह हाथ पांव धो कर कुल्ला करना और परमेश्वर का ध्यान करना। रात के दस बजे सोना; पूरे छः घन्टे सोना, कम बिल्कुल नहीं। एक चारपाई पर न सोना चाहिए; ऋतु गामी होना चाहिए।

(७) मल त्याग के लिए अधिक समय न बैठना चाहिए, इस से बवासीर हो जाती है।

(८) खाना जहां तक हो सके चबा कर खाना; ३२बार यदि प्रत्येक ग्रास चबाया जावे तो कोई बीमारी नहीं होती। खाने के पश्चात् तत्काल ही लघु शंका के लिए बैठना चाहिए क्योंकि इस से मसाने की बीमारी नहीं होती।

(६) प्रातःकाल उठकर पहले अनुमान आध पाव के बासी पानीं नाक पकड़ कर पीना, जिस से अजीर्ण कभी नहीं होता।

(१०) पाजामे के अन्दर लङ्गोट रखना चाहिए और लंगोट समेत नहाना चाहिए। लघु शंका के पश्चात् पानी वा

समाज का वार्षिकोत्सव १६, १७ अगस्त, १८९६ को था। बीमार पुत्र को वहां से जालन्धर छोड़ कर पण्डित लेखराम शिमला आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। वहां से जब २६ अगस्त को जालन्धर लौटे तो प्यारे सुखदेव की बीमारी बढ़ी हुई देखी। हम सबने चिकित्सा तथा निदान कराने में कुछ उठा नहीं रक्खा, परन्तु हम सब के देखते २ पं० लेखराम का प्यारा पुत्र २८ अगस्त, १८९६ के दिन, सवा वर्ष की आयु में, इस भौतिक शरीर को त्याग कर स्वर्ग-लोक का पथ गामी बना। उस समय पण्डित लेखराम की सहन शक्ति का मैंने चमत्कार ही देखा था। किसी प्रकार के भी शोक को समीप नहीं आने देते थे।

परन्तु बच्चे की दुखिया माता के हृदय पर बड़ा भारी वज्रपात दिखाई देता था। जिस जालन्धर की भूमी में पुत्र रूपी रत्न प्राप्त किया था उसी भूमी पर उस की राख करके फिर कोमल हृदय भारत रमणी से कब वहां निवास किया जा सक्ता था। धर्म-पत्नी को लेकर पं० लेखराम घर पहुंचाने चले गए और दो दिनों के पश्चात् पूर्ववत् ही धर्म-प्रचार में सन्नितद्ध होगए।

साधारण प्रचार का अन्तिमवर्ष।

जुलाई के आरम्भ में पसरूर (ज़िला सियालकोट) से पंण्डित लेखराम के लिए मांग आई। आ० प्र० सभा क एक प्रचारक ने महम्मदी जगत् को हिला दिया था। इस पर तीन

महम्मदी प्रचारक बुलाए गए जिन से शास्त्रार्थ की छेड़ छाड़ शुरू हुई, तब पण्डित लेखराम के लिए तार पहुंचा। १८ जुलाई, १८९६ को आर्य्य-पथिक जालन्धर से चले और १९ को सायंकाल पसरूर में पहुंच गए। उसी समय बड़ा भारी नगर-कीर्तन हुआ। २० जुलाई को पहला व्याख्यान "वैदिकधर्म्म की श्रेष्ठता" पर हुआ जिस में ८०० हिन्दुओं के साथ २०० मुसलमान् भी उपस्थित थे। व्याख्यान की समाप्ति पर पसरूर में उपस्थित पांच मौलवियों को प्रश्न करने का अवसर दिया गया परन्तु सिवाय एक मौलवी के और कोई न उठा और उस ने भी केवल आर्य्य-पथिक की बातों को दोहरा दिया। दूसरे व्याख्यान का विषय था "सचाई का मज़बूत चट्टान" मौलवी लोगों ने पत्र-व्यवहार में ही समय समाप्त किया और पण्डित लेखराम दो और व्याख्यान दे कर जालन्धर लौट आए।

पसरूर के सम्बन्ध में एक घटना लाला गणेशदास सियालकोटी ने लिखी है जो धर्मबीर लेखराम के निडर आत्मा की साक्षी है। तीसरे दिन पण्डित लेखराम व्याख्यान के लिए अभी खड़े होने की ही तय्यारी कर रहे थे कि एक बड़े प्रसिद्ध म्यूनिसिपल-कमिश्नर आए और महाशय मथुरादास प्रचारक के पास बैठ कर कुछ कानाफुसी करने लगे। आर्य्य-पथिक ने कहा—"घुसपुस क्या करते हो—क्या बात है?" प्रचारक मथुरादास जी ने कहा कि यह महाशय थानेदार साहब का सन्देसा लाए हैं कि यदि बलवा (लड़ाई

झगड़ा) होगया तो पुलिस ज़िम्मेवार न होगी। आर्य्य पथिक की आंखें लाल होगईं और कड़क कर बोले— "क्या हम युद्ध करने आए हैं? हम तो धर्मोपदेश के लिए आए हैं सो जब तक चाहेंगे स्वतन्त्रता से करेंगे। जिस का जी चाहे सुने, जिस का जी न चाहे न सुने। अगर यों ही बलवा हो तो पड़ा हो। हम देखेंगे कौन बलवा करता है। हम थानेदार साहब वा और किसी साहब की रक्षा की परवाह नहीं करते।"

जब व्याख्यान के लिए खड़े हुए तो देखा कि टाउन पुलिस के कुछ चौकीदार हाथ भर का लम्बा डन्डा लिए खड़े हैं। उन की ओर देख कर अटक अटक कर कड़कते हुए बोले —"ओ काली पगड़ी वालो! अगर व्याख्यान सुनना है तो अपनी खुशी से ठहरो नहीं तो तुम्हारी रक्षा की हमें परवाह नहीं है; अभी चले जाओ। मैं देखूंगा कि कौन मुझे काट जाता है।"

पसरूर से निवृत्त हो कर पंडित लेखराम शिमला आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए चले गए। वहां पहले से मिर्ज़ा गुलाम अहमद के चेले ख़्वाजा कमालुद्दीन ने अपने मिशन का काम जारी कर रक्खा था। पण्डित लेखराम ख़्वाजा साहेब के व्याख्यानों को सुनने जाते रहे और फिर आर्य्य-मन्दिर में तीन बड़े ज़बरदस्त व्याख्यान दिए। महम्मदियों की निमाज़ के मुक़ाबिले में आर्यों की सन्ध्या की श्रेष्ठता जतलाई और वैदिक-धर्म के सौन्दर्य्य को भली प्रकार प्रकाशित किया।

मुसलमान तो पण्डित लेखराम के आक्रमणों से मुद्दत से तङ्ग आए हुए थे, परन्तु उन दिनों आर्य्य-पथिक ने एक नई पुस्तक

हुज्जतुल इसलाम

का नोटिस दे रक्खा था। मुसलमान सुन चुके थे कि पण्डित लेखराम इस पुस्तक में महम्मदी मत के विरुद्ध अपना सारा ज़ोर लगाएंगे। इस से पहले मिर्ज़ा गुमाम अहमद क़ादियानी; आर्य्य-पथिक की अकाट्य युक्तियों से तङ्ग आकर, जवाब देने की, ताब न रखते हुए उन्हें मौतकी धमकी दे चुका था और लिख चुका था।

الا اے دشمن ناداں و بے راہ
بترس از تیغ بُران محمّد

कि महम्मदी तलवार से डर और इसलाम के विरुद्ध लिखना छोड़ दे। इन सब अवस्थाओं के होते हुए जब मिर्ज़ा क़ादियानी के चेले ने हिन्दुओं के अन्ध विश्वासों को आर्य्य-समाज पर मढ़ना शुरू किया तो अपने अन्तिम व्याख्यान में पण्डित लेखराम ने यह सिद्ध करने के लिए प्रमाण दिए कि इसलाम के पैग़म्बरों ने खुदाई का दावा करके कुफ़् फैलाया है। जो प्रमाण आर्य्य-पथिक ने उस समय दिए थे वे सब "हुजत्तुल इसलाम" में पीछे छप गए हैं। सारा सभा-मण्डय मनुष्यों से भरा हुआ था, जिन में आधे मुसलमान थे। जब पंडित लेखराम ने अन्यों के प्रमाण देते २

एक आयत पढ़ी जिस का अर्थ था—" मैं खुदा के नूर से हूं।" और इस पर एक कवि का बचन पढ़ा—

بظاہر نور ایزد سے جدا ہے
شعاع نور بے کیف خدا ہے

जिस का तात्पर्य यह है कि यद्यपि महम्मद ब्रह्म के प्रकाश से जुदा प्रतीत होता है परन्तु वह है वही ब्रह्म। मुसलमानों की जमात में से एक युवक मण्डल से रहा न गया और उन में से एक युवक बी० ए० ने चीख कर कहा—" क़ाफ़िरों को काटने वाली महम्मदी शमशीर को मत भूल " पण्डित लेखराम एक पल के लिए रुक गए; फिर जिधर से शब्द सुने थे उधर आंखें घुमा कर सिंहनाद गुंजादिया—" मुझे बुज़दिल महम्मदी तलवार की धमकी देता है। मैंने अधर्मी निर्बल मनुष्यों से डरना नहीं सीखा। जानते नहीं हो मैं जान हथेली पर लिये फिरता हूं।"

सारे हाल में सन्नाटा छागया और व्याख्यान के अन्त तक फिर किसी ने चूं न की। जैसा कि मैं पहले बतला चुका हूं शिमला से पण्डित लेखराम सीधे जालन्धर गए थे जहां अपने अकलौते पुत्र का उन्हें अन्तेष्ठि संस्कार करना पड़ा। जालन्धर से परिवार को घर छोड़ कर पंडित लेखराम सीधे वज़ीराबाद के वार्षिकोत्सव में सितम्बर, १८९६ के आरम्भ में ही पहुंच गए। इस के विषय में श्री नारायण कृष्ण जी प्रधान आर्य्य-समाज गुजरांवाला ने लिखा है—

"आर्य्य-पथिक सब बातों पर आर्य्य-समाज के काम को तर्जीह दिया करते थे। हम लोगों को याद है कि एक बार जब हम लोग वज़ीराबाद के उत्सव पर गए हुए थे तो वहां हम को समाचार मिला कि पण्डित लेखराम का अकौता बेटा संसार से चल बसा है। वज़ीराबाद पहले उन के आने की ख़बर बड़ी गर्म थी परन्तु इस शोक-जनक समाचार को सुन कर समझा गया कि अब पण्डित जी नहीं आ सकेंगे। परन्तु बहुत थोड़ी देर के पश्चात् आश्चर्य से देखा कि वह अपने घर से सीधे उत्सव में आ पहुंचे और ऐसी शोक-जनक घटना के होते हुए भी अपने धार्मिक कर्तव्य को बड़ी गम्भीरता से पलन करते रहे।"

वज़ीराबाद के इस वार्षिकोत्सव में मैं भी सम्मिलित था। पहले दिन पंडित लेखराम जी का व्याख्यान प्रातःकाल के समय विभाग में छपा हुआ था, परन्तु राजा सरअताउल्ला और उन के परिवार के सम्मिलित होने के कारण उस समय मुझे खड़ा किया गया। न जाने मुसलमान भाई पंडित लेखराम से क्या आशा रखते थे कि मेरे व्याख्यान को सुन कर विस्मित हो गए। उन की समझ में न आया कि आर्य्य-मुसाफ़िर क्यों ऐसा जन-प्रिय तथा शान्ति-वर्धक व्याख्यान देता है। मेरा विषय ईश्वर-प्राप्ति था और मैंने उस में महम्मदी बुत और पीर परस्ती की भी ख़बर ली थी; इस लिए श्रोता-गण को निश्चय हो गया कि पंडित लेखराम ही बोल रहे हैं।

सायंकाल के व्याख्यान में मेरा नाम था, इस लिए उस समय क़ादियानी मिर्ज़ागुलाम अहमद के चेले हकीम नूरउद्दीन

भी तशरीफ़ लाए थे। मुसलमानों की भी पर्याप्त उपस्थिति थी जब पंडित लेखराम व्याख्यान के लिए खड़े हुए। उस व्याख्यान में पंडित लेखराम ने ईश्वर का स्वरूप ऐसा खींचा कि मुसलमानों के सिर हिलने लग गए। फिर जब झूठे पैग़म्बरों की पोल खोलनी शुरू की तो जहां मुसलमान सर्व साधारण कर्त्तालिका ध्वनी से सभा मण्डप को गुंजाने लगे वहां मौलवी नूरउद्दीन बहुत खिज रहे थे, परन्तु उस समय क्या हो सकता था। आर्य-पथिक के व्याख्यान की नगर में धूम मच गई।

सांयकाल हम सब पलकू के किनारे किनारे श्रोत की ओर दूर निकल गए और सन्ध्या बंदन से निवृत्त होकर रात को लौट रहे थे कि नगर के बाहर एक मस्जिद के खुले मैदान में मौलवी नूरुद्दीन अपना धर्म-प्रचार कर रहे थे। रात अंधेरो थीं, हम सब सुनने खड़े होगए। मौलवी साहब बोले—"अरे बेवकूफों! तुम सब बकरों की तरह दाढ़ी हिला रहे थे और यह न समझे कि तुम्हारे ईमान पर कुल्हाड़ा चला रहा है।" इतना ही सुनकर मैंने पंडित लेखराम जी को उनकी कृत कार्यता के लिए बधाई दी और हम सब भोजन शाला को चल दिए।

मुझे यह भी याद पड़ता है कि दूसरे दिन बाज़ार में आर्य्य पथिक की कुछ मुसलमानों से बात चीत होने लगी, जिस पर आर्य्य पुरुष घबरा गए थे; परन्तु उसका परिणाम अच्छा ही निकला।

हम सब वज़ीराबाद आर्य्य-समाज के उत्सव में ही सम्मि-

लित थे कि मुकेरियां के एक भाई वहां के अधिकारियों का पत्र लेकर पहुंचे जिससे पता लगा कि वहां एक विचित्र प्रकार का शास्त्रार्थ रचा गया है। सनातन सभा के किसी पंडित ने एक महाभारत के श्लोक को वेद मंत्र कह कर पेश किया, जिस पर आर्य्य-समाज तथा सनातन सभा के प्रधानों का विवाद होगया और दोनों के हस्ताक्षर से एक स्वीकार पत्र स्टाम्प पर लिखा गया। इस स्वीकार पत्र का तात्पर्य यह था कि यदि सनातन सभा का पंडित अपने बोले श्लोक को वेद में दिखा दे तो आर्य्य-समाज के प्रधान ५००) जुरमाना देंगे, परन्तु यदि सनातनसभा का पंडित ऐसा न दिखा सके तो सनातन-सभा का प्रधान ५०) जुरमाना देगा। मैंने इस जुआबाज़ी के शास्त्रार्थ से इनकार करना चाहा, परन्तु आर्य्य-पथिक ने कहा कि जुएबाज़ी को अलग कर के यह तो हमारा कर्तव्य है कि अपने मत का समर्थन किया जावे। बस हम दोनों गुरुदासपुर पहुंच कर इक्के पर ९ सितम्बर को २ बजे दिन के मुकेरियां पहुंच गए। उस दिन मैंने और दूसरे दिन आर्य्य-पथिक ने व्याख्यान दिए। तीसरे दिन २००० की उपस्थिति में सनातनी बड़े २ पंडित भी श्लोकोवेद-मन्त्र सिद्ध न कर सके।

परन्तु इस स्थान की एक घटना पंडित लेखराम के हठ और उन के धर्म्म-प्रेम दोनों का परिचय देती है। मैं यतः मन्त्रों का उच्चारणादि शुद्ध कर सक्ता था इस लिए मुकेरियां के आर्य्य भाई चाहते थे कि शास्त्रार्थ मैं करूं। उन को यह भी डर था कि कहीं पंडित लेखराम अपने अक्खड़पन से

उलटा असर न डाल देवें । जब वेदों में आन्दोलन करके देख लिया कि विवादास्पद छन्द वेद-मन्त्र नहीं प्रत्युत महाभारत का श्लोक है तो मैंने कहा कि हममें से एक को अब जाने दो क्योंकि हम दोनों ने जगराउं आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होना है और वहां १२ सेप्तेम्बर के प्रातः पहुंचने के लिए मुकेरियां से ११ के प्रातःकाल चल देना चाहिए । जाने को मैं स्वयम् तय्यार हुआ जिस पर तीन बार यही उत्तर मिला कि कोई इक्का नहीं मिलता; फिर यह निश्चय हुआ कि पण्डित लेखराम जी जांय । यह निश्चय होना ही था कि पांच मिनिटों में बड़ा तेज़ इक्का लाकर खड़ा कर दिया गया । पंडित लेखराम जी असल बात ताड़ गए और बोले —"अब बड़ी जल्दी इक्का आगया । जाओ मैं नहीं जाता, मैं तुम्हारी शरारत समझ गया हूं ।" मैंने इक्का ले जाने को कहा और आर्य-भाई घबराए कि अब शास्त्रार्थ में पंडित लेखराम जी खड़े होकर कहीं काम न बिगाड़ दें । जब शास्त्रार्थ के मैदान में आए और मैंने पंडित लेखराम को कुर्सी पर बैठने को कहा तो उनमें विचित्र परिवर्तन दिखाई दिया । ऐसा ज्ञात होता था कि सारे शास्त्रार्थ का उत्तरदातृत्व उन्हीं पर है और यह उनका ही कर्त्तव्य है कि सब से योग्य आदमी को शास्त्रार्थ के आसन पर बैठाएं । मुझे कहा—"लाला जी ! बैठिए, शास्त्रार्थ आप करेंगे ।" मैंने कहा कि पण्डित लेखराम की उपस्थिति में मैं कैसे बैठ सक्ता हूं । उत्तर बड़े प्रेम और आग्रह पूर्वक था । मुसकिराकर बोले—"वह बात अब जाने दीजिए, यह आप का ही काम है। यदि मैं बैठ गया तो शास्त्रार्थ की रिपो-

ई कौन लिखेगा।" यह कहा और मुझे पकड़ कर कुर्सी पर बैठा दिया।

यह आचरण का परस्पर विरोध शायद सब की समझ में न आएगा, परन्तु बुद्धिमान पाठक इसके रहस्य को समझ जायंगे।

१२ सितम्बर को मुकेरियां से चल कर दिन रात यात्रा करते हुए हम दोनों १३ को प्रातः जगराउं के वार्षिकोत्सव में जाकर सम्मिलित हुए। जो रहतिए पीछे से शुद्ध होकर आर्य्य-समाज में सम्मिलित हुए थे वे पहले पहल इसी स्थान में पण्डित लेखराम जी को मिले थे।

जगराउं में फिर नियत घटना आकर उपस्थित हुई। वहां के पौराणिकों ने स्वयम् आर्य्य-समाज का सामना करने की शक्ति न देखते हुए मुसलमानों को मुबाहसे के लिए खड़ा किया। तहसीलदार भी मुसलमान था, इस लिए उन्हें विजय की बड़ी आशा थी। मैं जब उत्सव समाप्त कर के लौटने लगा तो कुछ आर्य्य भाइयों ने वहां भी मेरी विनत की कि मैं आर्य-पथिक को साथ ही ले जाऊं। मैंने मलेरकोटले की व्यथा याद करके ऐसा करने से इन्कार कर दिया। शहर में धूम मच गई कि आर्य्यों को, और विशेषतः लेखराम को, कष्ट दिया जायगा। परन्तु सिंह के समीप जाना बड़ा कठिन था। विरोधियों की पोल खोलने से पहले आर्य्य-पथिक लेखराम जगराउं से न हिले।

२६, २७ सितम्बर, को पण्डित लेखराम झङ्ग के वार्षि-कोत्सव में व्याख्यान देते तथा शंका समाधान करते रहे।

नवम्बर के अन्त में लाहौर आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होकर व्याख्यान दिए और उस के पश्चात् फिर २७ दिसम्बर, १८९६ के दिन जालन्धर आर्य समाज के वा-र्षिकोत्सव पर पहुंचे। इन दोनों महीनों लाहौर रहकर जीवन चरित्र की तय्यारी और छपाई का काम निर्विघ्नता से होता रहा और अपनी माता तथा धर्म-पत्नी को भी आर्य-पथिक ने ला-हौर में ही टिका दिया। जालन्धर आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्स-व पर व्याख्यान देकर पंडित लेखराम मेरे साथ ही लुधियाना आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर गए। उस स्थान की एक घटना वर्णनीय है जिस से पता लगता है कि प्रतिज्ञा-पालन का भाव आर्य्य-पथिक को कैसा दृढ़ संकल्प बनाए हुए था।

लुधियाना आर्य्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर अन्तिम दि-वस पण्डित लेखराम का व्याख्यान नियत था। उस से पहले मैंने वेद-प्रचार-निधि के लिए अपील की थी और जब धन एकत्र हो चुका तो पण्डित लेखराम व्याख्यान के लिए खड़े हुए। ११ माघ, सम्वत् १९५३ के सद्धर्म प्रचारक में लिखा है—"अभी व्याख्यान आरम्भ नहीं किया था कि पण्डित जी की प्रकृति कुछ रुग्न हो गई (पेट में दर्द होने लगा था) जिस कारण वह अपना व्याख्यान न दे सके। उनके स्थान में लाला मुन्शीराम जी ने धर्म विषय पर........व्याख्यान दिया........ उनके पश्चात् पण्डित जी की प्रकृति कुछ ठीक हो

गई और उनका व्याख्यान आरम्भ हुआ।............ जनो-पस्थिति १२०० के लगभग थी।" २६ दिसम्बर की रात को लुधियाना आर्य्य-समाज का उत्सव समाप्त हुआ और ३१ की शाम को पण्डित लेखराम रेल और टट्टू की यात्रा करते हुए शरक़पुर आर्य-समाज में पहुंचे और १ जनवरी, १८६७ के दिन धर्म-चर्चा में पूरा भाग लेने के अतिरिक्त एक पतित की शुद्धि की और अपने प्रभावशाली व्याख्यान के साथ वार्षिकोत्सव को समाप्त किया। शक़रपुर से लौटकर फिर पण्डित लेखराम के भागोवाला (ज़िला गुरुदासपुर) आर्य्य-समाज के उत्सव में ही सम्मिलित होने का पता लगता है जो १७ और १८ जनवरी को हुआ था। उत्सव में पण्डित लेखराम जी ने दो व्याख्यान दिए और उत्सव के पश्चात् तक ठहर कर चौधरी फ़तेहसिंह के लड़के का नामकरण संस्कार कराया तथा आर्य्य-समाज के कुछ नए सभासद् बनाए। यह सब कुछ तो किया परन्तु मुझे जिस दृश्य में अधिक आनन्द आया वह उत्सव के समय का शास्त्रार्थ था।

सायंकाल अपना व्याख्यान समाप्त कर के मैं सन्ध्या वन्दन के लिए चला गया। फिर भोजन कर के बैठा था जब पता लगा कि एक मुसलमान ग्रेजुएट के साथ पंडित लेखराम का शास्त्रार्थ हो रहा है। कम्बल ओढ़ कर मैं शास्त्रार्थ का आनन्द लेने चल दिया। जनोपस्थिति अढ़ाई हज़ार से कम न होगी। आस पास के ग्राम स्त्री पुरुषों से खाली हो गए थे। इन में दो

सहस्त्र तो जाट थे और शेष ब्राह्मण, खत्री, मुसलमानादि। एक तुर्की टोपी वाला एक ओर और आर्य्य-मुसाफ़िर दूसरी ओर बैठे हैं। प्रश्नकर्त्ता "तुर्की टोपी" थे और उत्तरदाता पण्डित लेखराम। पंडित लेखराम मेरे आने से पहले यह प्रतिज्ञा स्थापन कर चुके थे कि उत्तर में दुर्जन-तोष न्याय के अनुसार जो कुछ वह कहेंगे उस के लिए कुरान वा हदीस मूल का प्रमाण देंगे, और पूछा था कि क्या महम्मदी प्रश्नकर्त्ता भी ऐसी प्रतिज्ञा करने को तय्यार हैं। "तुर्की टोपी" उत्तर दे चुकी थी कि वह भी मूल वेद का ही प्रमाण देंगे। महम्मदी ग्रेजुएट ने प्रश्न नियोग विषय पर कर छोड़ा था और जब मैं पहुंचा तो एक पुस्तक हाथ में लिए उस में से कुछ पढ़ रहा था। मेरे सामने निम्न लिखित नाटक हुआ।

महम्मदी—"देखिए हवाला रगवैद, मन्दिल........ सोकत........"

आर्य्य पथिक—"शुद्ध उच्चारण तक नहीं कर सक्ते हो और वेद-दानी का दावा है। वस तुम निग्रह स्थान में आ गए। या तो दावा छोड़ो या हार मानों।"
महम्मदी—"अजी हम वैद जानें या न जानें, एतराज़ तो ठीक है।"

आर्य्य पथिक—"पहले कहो—मैंने झूठ बोला कि मैं मूलवेद जानता हूं और झख-मारी—यह कहो तब मुबाहसा आगे चलेगा।"

मुहम्मदी ग्रेजुएट ने बहुत हेरा फेरी की परन्तु अन्त में उस को कहना ही पड़ा—" अच्छा मैंने ग़लत कहा था कि मैं मूल-वेद में से हवाले दूंगा—अब मेरे सवाल का जवाब दीजिए।"

आर्य-पथिक—"आए अब राह-ए-रास्त (सीधे मार्ग) पर; हां, अब जवाब देता हूं।"

मेरे पास दस बीस पढ़े लिखे मुसलमान और दो तीन मौलवी खड़े थे, सब बोल उठे—"सुबहानऽल्ला ! क्या ताक़त मुनाज़रा (वाद शक्ति) है ! शेर के पंजे में फंसा हुआ है।"

पंडित लेखराम ने न केवल वैदिक नियोग का ही भली प्रकार मंडन किया प्रत्युत मुसलमानों के मुताके मसऽले को भी पेश किया। इस पर मुहम्मदी ग्रेजुएट ने कहा—"सिर्फ़ क़ुरान की आयत पढ़ देने से काम न चलेगा। किसी मुस्तनिद तफ़सीर (प्रामाणिक भाष्य) का हवाला भी देना होगा।"

आर्य्य पथिक—" अच्छा बतलाओ तुम किस तफ़सीर को मुस्तनिद मानते हो ?"

महम्मदी ग्रेजुएट ने जिस तफ़सीर का नाम लिया वही पण्डित लेखराम के हाथ में थी, उन्होंने उसमें से पढ़कर सुना दिया। मालूम होता है कि तुर्की टोपी ने कभी कोई तफ़सीर वफ़सीर पढ़ी न थी, पण्डित लेखराम से किताब खुद पढ़ने को मांगी। यहां

पण्डित लेखराम की हाज़िर जवाबी काम आई। महम्मदी ग्रे-जुएट मुबाहसे में एक स्थान में कह चुका था कि "ख़ुदा को बीच में क्यों घसीटते हो, क्या लाज़मी है कि ख़ुदा को मान कर ही मुबाहसा चले ?" इसी का सहारा लेकर और सामने खड़े एक वृद्ध मौलवी साहेब को सम्बोधन करके आर्यपथिक ने कहा—

"मौलवी साहेब ! आप तशरीफ़ लाकर हाज़रीन को पढ़ सुनाइए कि कुरान शरीफ़ की तफ़सीर में क्या लिखा है। इस दहरिए (नास्तिक) के हाथ में मैं कुरान शरीफ़ न दूंगा।"

मौलवी साहेब को कोई आकर्षण शक्ति वेदी पर खींच ले गयी और उन्होंने तफ़सीर के शब्द ज्यों के त्यों पढ़ कर अ-पनी ओर से यह भी कह दिया—"कौन कहता है कि कलाम मजीद में मुताका हुक्म नहीं है ?"

सभा मण्डप कर्तालिफाध्वनि से गूंज उठा और सभा विसर्जन हुई।

इसके पश्चात् पण्डित लेखराम जमकर लाहौर में ही जी-वन चरित्र का काम करते रहे और उनके कहीं बाहर प्रचार के लिए जाने का पता नहीं लगता। मैंने भी उनका यह अन्तिम व्याख्यान सुना; इसके पश्चात् पण्डित लेखराम का सबसे अन्तिम प्रचार मुलतान नगर में हुआ जिस का हल उनके पत्र से ज्ञात होता है जो उन्होंने ४मार्च को ११ बजे रात्री के समय, मन्त्री आर्य-प्रतिनिधि सभा को लिखा था—"मेरे यहां ४

व्याख्यान हुए, खूब रौनक़ रही। मेरे सक्खर जाने के लिए यहां के समाज की सम्मति नहीं है, क्योंकि वहां कारन्टीन बीमारी का लगा हुआ है। मुझे आग्रह पूर्वक उन्होंने रोक लिया है और आपको तार दे दी है। मुज़फ्फ़र गढ़ में दूसरा समाज होने की शङ्का है इस लिए आज रात को वहां जाता हूं।"

पाठक वृन्द ! आपने आर्य्य-पथिक के जीवन के साथ साथ इतनी यात्रा की, आपका उत्साह बढ़ता गया और इस पवित्र जीवन के साथ प्रेम की वृद्धी होती गई। क्या आप अकस्मात इस जीवन श्रृङ्खला को टूटते देखकर दुखित न होंगे? मैं भी उसी प्रकार दुखित हूं और चाहता नहीं कि उसका वर्णन शीघ्र समाप्त हो। परन्तु काल की गति के आगे किस का वश चला है। फिर भी मुलतान के अन्तिम प्रचार को विस्तृत करके शिर पर आई हुई आपत्ति को कुछ काल के लिए टालना चाहता हूं।

मुलतान में कालिज दल वालों की ओर से दूसरा आर्य-समाज खुला हुआ था। उन्होंने आर्य्य-प्रतिनिधि सभा के काम के विषय में कुछ भ्रम फैलाए थे जिन्हें दूर करने पण्डित लेखराम गए थे। पण्डित लेखराम जी के मुक़ाबिले में उन लोगों ने भी व्याख्यान कराए जिन में पण्डित लेखराम को अपशब्द हीन कहे गए प्रत्युत सिक्खों को भड़काने के लिए उन्हें गुरु निन्दक बतलाया गया। ऐसी अवस्था हो चुकी थी जब ४ मार्च को पण्डित लेखराम का इस जीवन में अन्तिम व्याख्यान

हुआ। इस का आंखों देखा हाल एक सभ्य पुरुष ने, १४ वर्ष हुए, मुझे लिख कर भेजा था जिसे यहां उद्धृत करता हूं:—

"पण्डित (लेखराम) जी के व्याख्यान कुप्यवङ्गरी-गीरां और समाज मन्दिर में होते रहे। मैंने जाकर मुसलमानों से कहा कि उन से मुबाहसा करलो, वे कहने लगे कि यह बड़ा आलिम (विद्वान्) है हम उस की बराबरी नहीं कर सक्ते। ....एक दिन पंडित जी ने लाला काशीराम[क] वकील को, जो उस समय कल्वर्ड समाज के प्रधान थे, और चेतनानन्द जी (वकील) को समाज मन्दिर में बुलवाया और उन से कहा—"देखो मिर्ज़ा ने कैसी सख़्त किताब लिखी हैं जो कि अनजानों को भ्रम में डाल सक्ती हैं। इसका उत्तर अवश्य देना चाहिए। आप लोग निरे लड़ाई झगड़ों में पड़े हुए हो।" बहुत सी बात चीत हुई परन्तु कुछ परिणाम न निकला, बल्कि उसी दिन उन लोगों ने भाई जगतसिंह का व्याख्यान कुप्यवङ्गरीगीरां" में कराया। वहां ख़ालसों की उपस्थिति ख़ासी थी जिस में लाला काशीराम और लाला चेतनानन्द ने स्वयम् कहा कि पंडित लेखराम कहता है कि गुरुनानक मुसलमान था इस लिए उस का समाज से कोई सम्बन्ध नहीं। मैं कुछ भाइयों समेत पंडित जी के दर्शन को गया और व्याख्यान का सारा हाल उन्हें सुनाया। कुछ देर सोचने के पश्चात् बात चीत करते हुए पंडित जी के मुंह से निकला—"कौन कहता है कि गुरुनानक मुसलमान थे?" चलो कल यही व्याख्यान होगा।"

क-(आर्य्य-पथिक की मृत्यु के पश्चात् यह फिर वेद-प्रचार-दल के समाज के प्रधान हो गए थे।)

नोटिस रात को ही लिखे गए। दूसरे दिन ४ बजे मध्यानोत्तर मैं समाज-मन्दिर में गया। कई भाइयों के प्रश्नों के उत्तर देते रहे। फिर अजावयन मंगाई और साफ़ कर के पानी के साथ खाली और कहा—"रेल में यही मेरा जीवन है, यह बड़ी उत्तम औषधी है।" सात बजते ही पण्डित जी व्याख्यान के मैदान में पहुंचे। हम लोग भजन गाते थे और पण्डित जी पेन्सिल से व्याख्यान के लिए नोट लिख रहे थे। सिक्ख भड़काए हुए बड़े जोश से लाठिएं लिए जमा थे। व्याख्यान आरम्भ हुआ। आर्यवर्त की अवनति के आरम्भ काल से वक्तृता को उठाकर परस्पर के द्वेष के बीज का खोज लगाते हुए बतलाया कि थोड़े से स्वार्थ ने आर्य्य-वर्त का नाश कर दिया है। आपने बतलाया कि महमूद और अलाउद्दीन के विजय का साधक तुच्छ जीवों का स्वार्थ ही था। बहुत से दृष्टान्तों के पश्चात् आप ने विष्णु बावा, मुंशी इन्द्रमणि और स्वामी दयानन्द की हिम्मत का वर्णन किया जिन्हों ने विरोधी आक्रमणों से आर्य्य-जाति को बचाने का प्रयत्न किया। इस के पश्चात् अपने विषय को लेकर मिर्ज़ागुलाम अहमद की "सत् बचन" पुस्तक में से गुरु नानक के मुसमान होने के विषय में लेख पढ़कर चारों ओर देख पूछा—"यदि कोई ख़ालिसा बहादुर विद्यमान हैं तो इसका जवाब दे।" फिर लाला काशीरामादि के उत्तर में "ग्रन्थी फोबिया" पुस्तक पेश कर के पूछा कि जिन कल्चर्ड साहेबान ने गुरु नानक के विरुद्ध ऐसी पुस्तक छपवाई, क्या वे अब गुरु नानक के पवित्र आचरण पर लगाए कलंक को दूर

कर सक्ते हैं ?" फिर बड़े प्रबल प्रमाणों और युक्तियों से सिद्ध किया कि गुरु नानक मुसलमान न थे।

व्याख्यान की समाप्ति पर लाला चेतनानन्द जी के मुंशी ने विघ्न डालने की नीयत से कहा—"पंडित (लेखराम) जी ने (अपने व्याख्यान में) गुरु नानक को हिन्दू तो कहीं नहीं कहा" इस कुटिल नीति को भी पंडित लेखराम की हाज़िर जवाबी ने परास्तकर दिया। आर्य्य-पथिक बोले—

"देखो बाबा नानक देव स्वयम् क्या कहते हैं—हिन्दू अन्हा (अन्धा) तुर्को काणा । दोहां विचों ज्ञानी स्याणा—बाबा नानक जी ज्ञानी अर्थात् आर्य्य थे, गुलाम हिन्दू न थे।"

हमारे चरित्र नायक के जीवन की रंग-भूमि में अन्तिम जवनिका उठने वाली है वह अन्तिम दृश्य बड़ा ही मर्म भेदक, गंभीर और पवित्र है जो अपने स्थिरसंस्कार आर्य जनता पर छोड़ गया है। उस की अन्तिम जवनिका के गिरने के पश्चात् कुछ लिखना पाठकों के उच्च आदर्श की ओर उठे हुए हृदयों को फिर से भूमि तल पर पटकने के सदृश होगा, इस लिए आइए! इस विचित्र जीवन पर एक व्यापक दृष्टि पहले से ही डाल जांय।

आर्य्य-पथिक का चरित्र संगठन

गुण दोषों पर एक दृष्टि।

बचपन से ही लेखराम पर ब्राह्मणत्व के संस्कार पड़ रहे थे। यद्यपि वर्ण बिचार से जन्म क्षत्री गृह में हुआ था तथापि लेखराम के पूर्व जन्म के प्रबल संस्कार, विरुद्ध वायु-मण्डल में भी, उन्हें ब्राह्मणत्व के सांचे में ढाल रहे थे। उन का

त्याग का सरल जीवन

निस्सन्देह शाक्षी दे रहा था कि पुलीस के बदनाम महकमे के अन्दर भी सावधान रहकर यह एक दिन इन्द्रियों के दासत्व की बेड़ी को काट डालेंगे। तमाकू की तो बचपन में ही बैतुल बाज़ी से जड़ काट डाली थी। मांस मद्य तथा अन्य मादक द्रव्यों के कभी समीप नहीं गए। पाप रूपी दूषण तो एक ओर रहे किसी व्यसन को भी जीते जी समीप नहीं आने दिया। और तो और पान भी कभी नहीं खाया। कपड़ों के बनाव चुनाव को वह ज़नाना-पन के नाम से पुकारा करते थे। स्वास्थ अत्युत्तम रहता था, इस लिए पोशाक से शोभा बढ़ाने की उन्हें आवश्यकता न थीं। कैसे भी कपड़े किसी ढंग से पहन लें, उनके शरीर पर स्वयम् शोभा पा जाते थे। जब तक अत्यन्त आवश्यकता न होती तब तक दरमियाने दर्जे में भी यात्रा न करते। और जो व्यय करते वही सभा से लेते। जहां अन्य उपदेशक पूरे इक्के का किराया १) लगाते वहां आर्य्य पथिक के बिलों में

स्थिर होता है । पण्डित लेखराम जैसे मध्यम श्रेणी के धार्मिक वीरों में से थे वैसे क्षात्र-धर्म्म-मिश्रित गुण भी उन में प्रवेश किए हुए थे। धर्म्म की आड़ में अधर्म होता देख कर वह डांट बताए बिना रह नहीं सक्ते थे । और आर्य्य-समाज के सभासदों को गिरे हुए देख कर तो उन्हें बहुत ही शोक हुवा करता था । इस सम्बन्ध में मैं उन की नोट बुक से कुछ लेख उद्धृत करता हूं ।

सं० १८९१ ई० के जनवरी मास में पण्डित लेखराम ऋषि दयानन्द के जीवन वृत्तान्त का मसाला इकट्ठा करते हुए दानापुर (बिहार प्रान्त) आर्य्य-समाज में पहुंचे । यहां के विषय में उन की गुप्त नोट बुक में दर्ज है—"दानापुर समाज का एक अफ़सोसनाक हाल—२७, २८ जनवरी १८९१ ई० (१) वहां के तमाम मेम्बर बिरादरी के डर के मारे श्राद्ध करते हैं। (१)—नामी मेम्बर आर्य्य समाज के घर में उस के लड़के की शादी है । उस ने २७ जनवरी की रात को एक कत्थक का नाच कराया जिस में चन्द मुअज्ज़िज़ मेम्बर आर्य्य समाज गए । —भूत पूर्व मन्त्री, —उप प्रधान, —आदि । और आज २८ जनवरी बुद्धवार को उस के यहां रंडी का नाच है । मुझे अफ़सोस से मालूम हुवा कि एक मेम्बर ने आर्य्य-समाज के मन्दिर में आकर लोगों को यह न्योता दिया कि आज भी तुम चलना ।

"बिरादरी का ज़ोर तोड़ने के वास्ते मेम्बर लोग बिलकुल कोशिश नहीं करते । वैसे हालत समाज की अच्छी है ।

मकान भी अपना ज़र-ख़रीद है, एक स्कूल भी जारी है, स्कूल के हेडमास्टर समाज के प्रधान हैं, तादाद भी एक माकूल है, हाज़िरी भी माकूल होती है, २५ मेम्बर संध्या करने वाले भी हैं, कुछ हवन करने वाले भी हैं, लाइब्रेरी भी ख़ासी— लेकिन बे सूद ! (व्यर्थ) ”

इस में सन्देह नहीं कि दुराचार से आर्य्य-पथिक को बड़ी घृणा थी परन्तु इस लिए दुराचारी पुरुष को त्याग कर उसे उस के भाग्य पर छोड़ देना वह अनार्यपन समझते थे। जब किसी आर्य्य-समाज में जा कर किसी काम करने वाले को अनुपस्थित पाते और सामाजिक सभासदों से उस पर दुराचार का आक्षेप सुनते तो सैर को चलते हुए उस के यहां पहुंच जाते और उसे साथ ले समझा कर गिरते २ उसे बचा लेते। ऐसी कई आप बीती घटनाएं लोगों को याद होंगी। यही कारण था कि यद्यपि मुहम्मदी मत को सब से बढ़ कर दुराचार की शिक्षा रूपी विषय फैलाने का साधन समझ कर उस की जड़ उखाड़ने को उद्दित रहते थे परन्तु महम्मदी जिज्ञासुओं के साथ जो उन को प्रेम था वह उन के मित्र भली प्रकार जानते हैं, और इसी प्रेम ने अन्त को उन्हें एक महम्मदी राक्षस की छुरी का शिकार बनाया।

यह प्रसिद्ध है कि साधारण सच्चे आदमी प्रायः क्रोधी अधिक होते हैं।

हठ और क्रोध

की यात्रा पण्डित लेखराम में भी अधिक थी। यों तो थोड़े ही सच्चे आदमी ऐसे देखने में आते हैं जिन में हठ और क्रोध का अभाव हो, किन्तु जिन धर्म सेवकों को दिन रात मूढ़ता, कुटिलता और अधर्म के साथ युद्ध करना पड़ता है उन की हठ और क्रोध की मात्रा रुद्र रूप धारण कर लेती है। यह सौभाग्य शताब्दियों के पश्चात् किसी योगी संशोधक को प्राप्त होता है कि वह अधर्म के लिए रुद्र रूप धारण करते हुए भी क्रोध और हठ को बश में रख सके। पण्डित लेखराम योगी न थे और नहीं धर्म के प्रवर्तकों में से एक, इसीलिए उन में हठ और क्रोध रूपी दोनों निर्बलताएं थीं। किन्तु हम उनके जीवन वृत्तान्त में यह कहीं नहीं पाते कि उस हठ वा क्रोध से किसी को कुछ हानि पहुंची हो।

एक बार अजमेर के आर्य्य-समाज मन्दिर में डेरा लगाने के पश्चात् कुछ लिख रहे थे। बाबूराम विलास सार्डा जी (जो वैदिक यन्त्रालय के अजमेर पहुंचने के दिन से ही उसके संरक्षक रहे हैं) ने पूछा कि महाराज क्या लिख रहे हो। उतर मिला—"वैदिक प्रेस वालों की ज़रा सी वेपरवाई से हमारे सिर पर आफ़त आजाती है और विरोधियों को उत्तर देते देते थक जाते हैं। देखो इस पत्थर-पूजक ने एक पुस्तक लिखी है जिसने यन्त्रालय की लापरवाई से फ़ायदा उठा कर बहुत से ऊटपटाङ्ग एतराज़ किए हैं। हम किस २ का उत्तर दें; आप लोग कुछ प्रबन्ध नहीं

करते ।" सार्दा जी ने निवेदन किया कि गुड़नियां पुरानी हैं उन के संशोधन का कुछ तो प्रयत्न हो ही रहा है। इस पर क्रोध में भर कर बोले—"ख़ाक कर रहे हो" और जो ५० वा ६० पृष्ठ लिखे हुए थे सब फाड़ डाले। जब सार्दा जी फटे पत्र इकट्ठा करने लगे तो उन्हें भी छीन लिया। सार्दा जी उदास हो कर घर चले आए और दूसरे दिन नियमानुसार पंडित जी को मिलने न गए। तब तो हमारे वीर उन के घर जाने को तय्यार हो गए। लोगों ने चपरासी दौड़ाया; सार्दा जी तत्काल हाज़िर हुए। जब सार्दा जी ने अपने न आने का कारण बतलाया तो आप गुलाब की तरह खिल गए और बोले —"ईश्वर जानता है सार्दा जी आप आर्य्य-समाज के सच्चे प्रेमी हैं, मैं उस पत्थर-परस्त का जवाब ज़रूर लिखूंगा।" और फिर आपने "सांच को आंच नहीं" शीर्षक देकर शिवनारायण प्रसाद कायस्थ की पुस्तक का उत्तर लिखा जो "कुल्लियात आर्य्य-मुसाफ़िर" के १०४ पर से आरम्भ होता है। हठ तो पंडित लेखराम में बहुत था, जिस के दृष्टान्त बचपन से ही मिलते हैं, परन्तु उस हठ का ही परिणाम

प्रतिज्ञा पालन की धुन

थी। आर्य्य-पथिक ने एक बार जो मुंह से निकला उसे हठ कर के भी निभाने का सदैव प्रयत्न किया। इन के अन्दर जहां धर्म के साथ प्रेम का भाव सर्व साधारण

से कहीं बढ़कर था वहां उस के निभाने के लिए आत्म-समर्पण तथा तप का भी बड़ा उच्च भाव था। इसके उदाहरण जहां बचपन से मिलते हैं वहां युवाऽवस्था में यह भाव हम यौवन पर चढ़ा हुआ पाते हैं। रिसाला धर्मोपदेश के लिए एक दो बार कातिब (कापी नवीस) न मिला। स्वयम् अभ्यास कर के छापने की स्याही से कापिएं लिखीं किन्तु रिसाले को बन्द न होने दिया।

हम देख चुके हैं कि १२ वर्ष की आयु में ही अपनी चची को एकादशी व्रत करते देखकर स्वयम् उपवास करने लग गए थे और जब तक उस पर श्रद्धा रही दृढ़तापूर्वक इस व्रत को निबाहा।

ज्वर हो, फोड़े निकले हों, चलने के अयोग्य हों, पुत्र की मृत्यु का शोक हो; कोई भी आपत्ति वा विपत्ति उन को अपने कर्तव्य पालन से नहीं रोक सकती। उन की दो काल की सन्ध्या के अटूट नियम की साक्षी में मेरे पास सैकड़ों पत्र पहुंचे हैं। जब मेरे साथ शिक्रम की सवारी में लुधियाने से जगरावं जा रहे थे तो मार्ग में पानी ले कर शौच के लिए गए। लौटने पर पता लगा कि हाथ पैर धोने और कुल्ला करने के लिए पानी नहीं है। मैं नीचे था और पंडित लेखराम ऊपर की छत पर थे। मार्ग में कुछ पूछने को आवाज़ दी, उत्तर कुछ न मिला। देखा तो आर्य्य पथिक सन्ध्या कर रहे हैं। जब दूसरी चौकी पर शिक्रम पहुंची तो एक भाई ने पूछा —"पंडित जी! क्या पेशावरी सन्ध्या हो चुकी।" पंडित

लेखराम ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—"तुम पोप हो जो विना पानी मिले ब्रह्मयज्ञ नहीं कर सक्ते । भोले भाई ! स्नान कर्म्म है, हुआ वा न हुआ; परन्तु सन्ध्या धर्म है और उस का न करना पाप है। "

प्रतिज्ञा पालन में ऐसी दृढ़ता का ही परिणाम था कि धर्मवीर लेखराम धर्म में

राज़ीनामा नहीं किया करते थे ।

जहां लेखराम के चरित्र में हम कुछ साधारण निर्बलताएं पाते हैं, वहां कई प्रकार की दृढ़ताओं को पराकाष्ठा तक पहुंची हुई देखते हैं। आत्म--सम्मान और निर्भयता के लिए मान इन के मन में वर्त्तमान सांसारिक सीमा से भी बढ़ा हुआ था। बचपन में ही जब मदरसे में प्यास लगी तो मदरसे का घड़ा भ्रष्ट देख कर मौलवी से प्यास बुझाने के लिए घर जाने की आज्ञा मांगी। मौलवी साहेब ने फ़रमाया--" यहीं पीलो, छुट्टी नहीं मिल सक्ती। " हमारे आत्मसंमानी चरित्र नायक ने न तो फिर मौलवी से ही गिड़गिड़ा कर पूछा और नहीं भ्रष्ट घड़े से पानी पिया; सायंकाल तक प्यासे ही बिता दिया।

एक विश्वास पात्र महाशय से पता लगा कि पंड़ित लेखराम मिडिल की परीक्षा में शामिल हुए थे। भारत-वर्ष के इतिहास

सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर सरकारी किताबों के अनुसार देने की जगह आप ने उन का खण्डन आरम्भ कर दिया। जहां अन्य विषयों में बहुत ऊंचे अङ्क प्राप्त किए वहां इतिहास में शून्य प्राप्त किया। किन्तु उसी इतिहास में अनुत्तीर्ण लेखराम को पांच वर्षों के पश्चात् पेशावर प्रान्त के हाकिमों ने ज़िले का इतिहास लिखने के लिए ऐतिहासिक मसाला जमा करने के काम पर लगाया था। उन के लिए धर्म्म धर्म्म था और अधर्म्म अधर्म्म। वह नहीं समझ सक्ते थे कि आग और पानी का कैसे मेल हो सक्ता है। यह भाव कभी २ व्यर्थ छिद्रान्वेषण की अवस्था तक पहुंच जाता था और उस से उपदेश के काम को (वाह्य दृष्टि से) हानि भी पहुंच जाती थी, परन्तु लेखराम अपने स्वभाव को इन छोटी हानियों के लिए बदल नहीं सक्ते थे। बहुत से धर्म्मात्माओं की सम्मति है कि अपने मन्तव्यों तथा धर्म के नियमों से न गिर कर भी राज़ीनामा हो सक्ता है, परन्तु यदि यह हट का भाव एक निर्बलता है तो हम उसे लेखराम के आचरण में छिपाना रहीं चाहते।

परन्तु इस निर्बलता का ही परिणाम था कि हम लेखराम में

अभय पद का आदर्श

अवलोकन करते हैं।

आर्य्य पुरुष प्रत्येक यज्ञ की समाप्ति पर प्रार्थना करते हैं—

अभयं नःकरत्यन्तरिक्षम-भयं द्यावा पृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ३४ ॥ अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ २५ ॥ अथर्व० का० १९ सू० १५ । मं० ५।६

पंडित लेखराम न केवल इन मन्त्रों का पाठ ही करते थे, वह इन मन्त्रों में बतलाई हुई अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न भी करते थे। उन के जीवन में ऐसी घटनाएं बहुत सी मिलती हैं जिन का वर्णन कायर हृदयों के अन्दर वीरता का संचार कर देता है।

बन्नू में जब १८९४ में पहुंचे तो सभासद् आपस में इस विषय पर कानाफूसी करने लगे कि जाहिल मुसलमानों के बेजा जोश से रक्षा के लिए पुलिस का प्रबन्ध करना चाहिए। पंडित जी ने यह सुन कर मन्त्री को कहा—"अगर मैं मुसलमानों से डरूं तो घर क्यों न बैठ रहूं, प्रचार के लिए बाहर क्यों निकलूं। पुलिस की कुछ ज़रूरत नहीं है।"

मलेरकोटला, जगराउं, शिमला आदि की घटनाएं अभी

सैकड़ों आर्य्यों को नहीं भूली होंगी । धर्म्म-वीर सचमुच अपनी "जान हथेली पर लिए फिरते थे ।" इसी लिए तो आर्य्य-जाति के कई भूषणों ने उन का नाम आर्य्य-समाज अली (عالی) रक्खा हुआ था; और यह नाम सार्थक भी था क्योंकि मुसलमानों का खण्डन करते करते उन में स्वयम् भी कुछ "जिहादी" भाव प्रवेश कर गए थे ।

वेद में लिखा है

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्

मनुष्य सृष्टि में ब्राह्मण शरीर के मुख्य भाग की तुल्य हैं। जैसे मुख में पांचों ज्ञानेन्द्रिय हैं और कर्मेन्द्रिय केवल वाणी है, इसी प्रकार ब्राह्मण का लक्षण यह है कि दिन रात ज्ञान की प्राप्ति में लगा रहे और जैसा ज्ञान प्राप्त हो उस का यथा-वत प्रचार करदे । मुख में जो भोजन डाला जाय उसे पचने के योग्य बना कर मुख शरीर के शेष भाग में बांट देता है; अपने लिए कुछ नहीं रखता । इसी प्रकार ब्राह्मणका धर्म है कि जहां अन्य वर्णों को शुद्ध आजिविका के साधन बतलाए वहां स्वयम् अर्थ सञ्चय में न फंसे । मैं दिखला चुका हूं कि ब्राह्मण के अन्तिम लक्षण का तो पण्डित लेखराम स्वरूप ही थे परन्तु, अन्य लक्षण भी उनमें भली प्रकार घटते हैं । ज्ञान प्राप्ति के लिए उन्हें था

तत्वान्दोलन में अनुराग ।

पण्डित लेखराम यद्यपि इङ्गलिश भाषा से सर्वथा शून्य थे और संस्कृत भी साधारण ही जानते थे, तथापि उद्यम शीलता तथा धैर्य्य की सहायता से इन भाषाओं में लिखे हुए ग्रंथों में से भी ऐसी विचित्र (अपने मतलब की) बातें निकाल लाते थे जिन का उन भाषाओं के जानने वालों को स्वप्न भी न होता था। यही कारण था कि आर्य्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब तथा सजीव आर्य्य-समाजों के अधिकारियों पर जब कभी वैदिक-धर्म के सिद्धान्तों के विषय में बाहिर से प्रश्न होते तो वे उन प्रश्नों को उत्तर प्राप्त करने के लिए पण्डित लेखराम के पास ही भेजा करते। मुझे इस प्रकार का बहुत सा पत्र व्यवहार मिला है जिस में न केवल महम्मदी तथा ईसाई मत के अनुयाइयों के प्रश्नों के उत्तर के लिए ही पण्डित जी को प्रेरित किया गया है प्रत्युत ऐसे प्रश्न भी उन के पास आन्दोलनार्थ भेजे गए हैं जिनका सम्बन्ध संस्कृत के गूढ़ ग्रन्थों तथा अङ्गरेज़ी के अनात्मवाद (Materialism) के साथ था। ऐसे प्रश्न पत्रों में मुझे दो पत्र बालमुकन्द आर्य्य के, उर्दू भाषा में लिखे हुए, मिले जो उक्त महाशय ने रावलपिंडी से आषाढ़ तथा कार्त्तिक सं० १६४० में आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम भेजे थे। इन पत्रों से विदित होता है कि उन दिनों भी बहुत से आर्य्य-सामाजी बिरादरी के मुक़ाबिले की शक्ति न रखते हुवे ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों से ही जन्म को वर्ण व्यवस्था का निर्णायक सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते थे और ऐसा करने के लिए आज कल के थियासोफ़िस्टों (Theoso-

phists) से भी बढ़कर दयानन्द के शब्दों की खींच तान किया करते थे

अङ्गरेज़ी ग्रन्थों से प्रमाण ढूंढने की इन्होंने विचित्र विधि निकाली। जब किसी ऐसे अंग्रेज़ी पढ़े के यहां जाते जिन्हें ग्रंथावलोकन में अनुराग दिखाई देता तो पण्डित जी का पहिला प्रश्न उस से यह होता—"सुनाइए कोई नई किताब पढ़ी !" यदि उस ने किसी नई किताब का नाम बतलाया तो जब तक उस से उस पुस्तक के सारे विषय न पूछ लें उस की जान न छोड़ते, और जो बात उन्हें अपने मतलब की मालूम होती उसे उसी भद्र पुरुष से अपनी नोट बुक में लिखवा लेते। फिर वह लिखी हुई इबारत दूसरे ग्रेजुएटों (Graduates) से पढ़वा और एक दूसरे के किए अर्थों को आपुस में मिलाकर निश्चय करते कि वह प्रमाण किस काम में आ सकेगा। किन्तु उस पहले नोट की यहीं समाप्ति न होती। जिस जिस नए अंग्रेज़ीदां से मिलते उसी विषय पर उस के विशेष पढ़े पढ़ाये हुए का स्मरण दिलाकर जितने नए प्रमाण उस विषय पर मिलते उन्हें इकट्ठा करते जाते।

इस सम्बन्ध में मुझे एक मनोरञ्जक वृत्तान्त याद आया है जो स्वर्गवासी धर्मात्मा विश्वासी लब्भूराम बी. ए. ने मुझे सुनाया था। "मौतके पश्चात् का दिन" (The day

after death) नामी लोइसफ़िग्योर कृत पुस्तक उन्हीं दिनों अधिक प्रसिद्ध हुई थी और पण्डित जी अपनी "मसऽला-ए-तनासुख़" (पुनर्जन्म) नामी पुस्तक के लिए नोट तैय्यार कर रहे थे। आपने फ़िग्योर की पुस्तक में से पुनर्जन्म सम्बन्धी एक उदाहरण किसी से नक़ल कराया हुआ था जो लब्भूराम जी को दिखाया और अर्थ करने को कहा। लब्भूराम जी ने साफ़ अर्थ कर दिए जिस से पण्डित जी का पूरा मतलब सिद्ध न हुआ; अर्थात् लुइस फ़िग्यूर उच्चयोनि से नीच योनि में गिरना नहीं मानता था। पंडित जी बोले—"भाई, ज़रा संभल के अर्थ करो। यह अर्थ कैसे हो सक्ते हैं। मनुष्य से जहां देव योनि में जाना मानता है तो नीच पशु योनि में जाना भी मानता होगा।" लाला लब्भूराम ने फिर वही अर्थ किए जिस पर पंडित जी खि़सियाने होकर बोले—"ख़ाक अंगरेज़ी पढ़े हो! आप ने बी. ए. की ही मट्टी ख़राब की। यह अर्थ भला कैसे हो सक्ते हैं।" लब्भूराम जी वक्ता थे रसीले, बोले—"पंडित जी! अर्थ तो वही हैं जो मैंने किए, मगर आपके डन्डे के डर से कहिए आप किसी ही कहदूं।" पंडित जी का गुस्सा हिरन हो गया और मुसकिरा कर बोले—"ईश्वर जानता है! लब्भूराम जी आप बड़े होनहार हैं। इन योरोपियनों को अभी पूरी समझ नहीं आई। रफ़्तः रफ़्तः (शनैः २) समझ जायंगे।"

इस में सन्देह नहीं कि पंडित लेखराम जिस लक्ष्य(अर्थात् वैदिक-धर्म के सिद्धान्तों की पुष्टि) को सामने रख कर आन्दोलन किया करते थे वह उन्हें किसी किसी समय अप्रमाणिक

बातों के लिए भी प्रमाणों की कमी नहीं छोड़ता था, परन्तु अपनी पुस्तकों में उन्होंने वही परिणाम लिखे हैं जिन की पुष्टि अकाट्य प्रमाणों से हुई। उदाहरण के लिए एक ही दृष्टान्त लीजिए जो पंडित लेखराम की ऐतिहासिक खोज प्रणाली पर बड़ा प्रकाश डालता है।

पं० लेखराम ने दो भागों में "तारीख़-ए-दुनिया" नाम की एक लघु पुस्तक लिखी थी। उस में विविध सम्वतों का वर्णन करते हुए उन्हों ने आर्य-ग्रन्थों के लिखे जाने के समय भी निश्चित किए हैं। पुस्तक का आधार उन नोटों पर प्रतीत होता है जो उक्त पं० जी की नोट बुक में मुझे मिले हैं। पं० जी की आन्दोलन प्रणाली यह थी कि पहले प्रतिज्ञा रूप से उस सिद्धान्त को लिख लेते थे जो उन्हें सिद्ध करना अभीष्ट होता। फिर जिन जिन के लिए प्रमाणाधार मिलता उसको रख कर शेष को काट देते। उनके नोटों में पहले वेदों के निर्माण का समय १ अरब ९६ करोड़ ८ लाख ५२ हज़ार ९ सौ ८९ वर्ष के देकर, उपनिषदों का समय इस प्रकार लिखा है:—

प्रथम मन्वन्तर—ईशोपनिषद्‌।
दूसरा मनवन्तर—केन
तीसरा मनवन्तर—कठ, प्रश्न।
चौथा मनवन्तर—मुंडक, माण्डूक्य।
पांचवां मनवन्तर—ऐत्तरेय, तैतिरीय।
छठा मनवन्तर—छान्दोग्य-

सातवां मनन्तर—वृहदारण्ड्यक, तथा मनु-स्मृति का निर्माण समय १, ८०, ००००० वर्ष

ऊपर के लेख के लिए जब कोई आधार न मिला तो ऊ-पर के पांचों मनवंतरों को लकीर में घेर कर लिख दिया—"छठे मनवंतर की तसनीफ़ात" और शायद जब इस के लिए भी कोई ऐतिहासिक लेख-वद्ध प्रमाण न मिला तो "तारीख़ दु-निया" में उपनिषदों के निर्माण काल पर कोई बिस्तृत विचार ही न किया।

पं० लेखराम ने एक स्थान में आर्य्य-वर्त्त सम्बन्धी सर्व इतिहास ग्रन्थों की सूची लिखी थी और मेरे साथ मिल कर वह-अंग्रेज़ी, आर्य्य भाषा, उर्दू—तीनों भाषाओं में एक प्रामा-णिक भारतवर्ष का इतिहास तैय्यार कराना चाहते थे।

पं० लेखराम के छोड़े नोट विचित्र "चाउ चाउ का मुरब्बा" है। कहीं तोपों के निर्माण काल का पता लगा कर उस का रामायण के काल से मुक़ाबिला, कहीं "खुदा की हस्ती के सबूत" में नौ प्रबल युक्तियों का खुलासा, कहीं दिल्ली की लाठ के वर्णन से आर्य्यों की शिल्पकारी की प्रशंसा, कहीं क़ुरान की आयतों की पड़ताल, कहीं समयानुकूल प्रयोग के लिए उ-द्धृत कविताएं, कहीं फ़ीरोजशाह के अत्याचारों के प्रमाण की फुलझड़ी, कहीं महम्मदियों के ७२ नहीं बल्कि ७८ फ़ि-रक़ों की सूची कहीं सुकृतपंथ के फ़ार्सी संस्कृत-मिश्रित मूल मन्त्र,

कहीं लाला साईं दास, लाला जीवन दास, लाला रघुनाथ साहाय, मुंशी दुर्गा प्रसाद, मुंशी केवल कृष्ण, थम्मनसिंह ठाकुर, लाला मुल्कराज भल्ला, हकीम बहाउद्दीन इत्यादि के बतलाए नुसखें सांप के काटे से लेकर सन्तान उत्पत्ति तक के इलाज के लिए,और कहीं वेद शास्त्रों के प्रमाणों की पत्रिका —कहां तक लिखें, संसार में ऐसा कोई विषय नहीं जिसकी खोज करना लेखराम के कार्य की सीमा से बाहर समझा जा सक्ता ।

तारीख़ दुनिया में वर्तमान सृष्टि की आयु (४, ३२, ००, ००, ०००) चार अर्ब बत्तीस करोड़ वर्ष लिखी है। इस के लिएप्रमाण में अथर्ववेद, प्रपाठक ८, अनुवाक १, मन्त्र २१ पं० लेखराम ने पेश किया है:—

शतंतेऽयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणिचत्वार कृणम् ॥

आर्य्य जनता का प्रायः यह निश्चय है कि पं० लेखराम वेद तथा अन्य शास्त्रों के प्रमाण औरों से ढुंढ़वा कर लिखा करते थे। यह बात कैसी निर्मूल है, इस को सिद्ध करने के लिए मैं ऊपर लिखित अथर्ववेद के प्रमाण विषय में श्री पंडित तुलसीराम स्वामी सामवेद भाष्य कार का पत्र देता हूं। उक्त पंडित जी लिखते हैं:—

"सं० ३१०१, ता.२०-८-१९००

श्रीमन्महाशय ! नमस्ते-आपके १८-८-१९०० के लेखानु-

सार यद्यपि पं० लेखराम बहुत बार मिले परन्तु केवल एक बार की बात जीवन चरित्र में लिखने योग्य है कि वे अपने विश्वास के ऐसे दृढ़ थे कि सन् ६० (कुम्भ १८६१ के अप्रैल में था) कुम्भ के मेले हरिद्वार पर आवश्यक होने पर मूल-वेद को प्रतिज्ञा के साथ खोजने लगे तो एक अथर्व (वेद) का मंत्र तत्काल कल्प वर्ष संख्या पदक ढूंढ लिया। यद्यपि संस्कृत नहीं जानते थे,(तथापि) वह मंत्र पण्डितों से पूछा तो उसी तात्पर्य्य का निकला।" उपनिषदों को वेद-मूलक ही सिद्ध करने के लिए उन्हों ने बड़ा प्रयत्न किया था और उपनिषदों में जो मूल-वेद का भाग है उसे मोटे अक्षरों में छपवा कर यह दिखलाने का विचार था कि जैसे उपनिषद् वाक्यों को हटा लेने से गीता का कुछ नहीं बचता वैसे ही वेद मंत्रों की प्रतीकें अलग करने से उपनिषद् समझ में नहीं आ सक्ते।

कहां तक लिखा जाय, सच्चे ब्राह्मण का यह लक्षण पंडित लेखराम में कूट कूट कर भरा हुआ था। दूसरा लक्षण ब्राह्मण का यह है कि जिस धर्म का निर्णय स्वयम् किया हो उस को संसार में निष्कपट हो कर फैलावे। इसी लिए आर्य्य-पथिक

आदर्श धर्म प्रचारक थे।

मौखिक प्रचार में उन की धूम मची हुई थी। आर्य्य-समाज में उन धर्म-प्रचारकों की संख्या उङ्गलियों पर गिनी जा सक्ती है जो लेखराम के समीप इस अंश में पहुंच सकें। गृहस्थ

होते हुए भी सन्यास की तितिक्षा तथा धारणा हम उन के आचरण में देखते हैं। विरोधी लोग प्रसिद्ध करते हैं कि पंडित लेखराम बदज़बान था। यद्यपि वह खण्डन सर्व मतों का एक सा करते थे, परन्तु हिन्दुओं, जैनियों, सिक्खों ने उन की कभी शिकायत नहीं की। इस का कारण तो यह हो सक्ता है कि यद्यपि इन मतों के संशोधन के लिए इनमतावलम्बियों को हिलाते थे तथापि आर्य्य-जाति के विरोधियों के आक्रमणों से इन को भी बचाने का ठेका लेखराम ने ही ले रक्खा था। एक बार मैं और पंडित लेखराम इकट्ठे दिल्ली से लौट रहे थे कि मार्ग में सनातन धर्म-सभा के पंडित दीनदयालु जी मिल गए। बात चीत आरम्भ होने पर पंडित लेखराम ने कहा—"आप हमें कोसने के लिए तो बड़े बहादुर हो लेकिन इसलाम आप के धर्म की जड़ें खोद रहा है और आप चुप बैठे हो" पंडित दीनदयालु जी ने उत्तर दिया—"यह काम तो हम सब ने आप के सपुर्द कर छोड़ा है; जब तक आर्य्य-मुसाफ़िर जीवित हैं तब तक हमारे धर्म की जड़ें कौन खोद सक्ता है।"

तब यह तो ठीक है कि हिन्दू, जैन, सिक्खादि तो उन्हें अपना समझ कर उन के कटु वचनों का सहन कर लेते थे, परन्तु यदि वह कटु भाषी होते तो मुसलमान जनता भी क्यों उन के व्याख्यानों पर मोहित होती। असल बात यह थी कि महम्मदी मौलवियों ने उन के पते की कहने और लिखने पर, उत्तर देने की शक्ति न रखते हुए, उन्हें "बदज़बान" प्रसिद्ध कर रक्खा था। परन्तु जब ऐसी बहकाई हुई भी मुसलमान

जनता लेखराम से प्रत्यक्ष परिचय करती तो उन पर आर्य्य-पथिक का प्रभाव पड़े विना नहीं रहता।

जहां दूसरे वक्ताओं के एक घन्टे के व्याख्यान के पश्चात् श्रोता घबरा जाते हैं वहां तीन घन्टों तक आर्य्य-पथिक की वक्ता सुनने के पश्चात् भी फिर एक घन्टा वैठने को तय्यार रहते थे। इस का कारण उन का विस्तृत ऐतिहासिक ज्ञान तो था ही परन्तु उन की वाणी मैं हास्य रस और हाज़िर जवाबी ऐसी मनोहर थी कि सुनने वाला कभी उकता नहीं सक्ता था।

हाज़िर जवाबी में कमाल।

जो पुरुष किसी बड़े काम में कृतकार्य होना चाहें उन के लिए "हाज़िर जवाबी" एक अपूर्व सम्मिलित अस्त्र शस्त्र है। जिस बात को दलील से काटने में घन्टों का नाश हो उस बात का "हाज़िर जवाबी" मिनटों में सफ़ाया बोल देतीं है।

लेखराम बचपन से ही हाज़िर जवाबी के लिए प्रसिद्ध थे। मदरसे में पहले साल ही परीक्षक इन की हाज़िर जवाबी से प्रसन्न हुए थे। इन के पहले उस्ताद तुलसीराम जी इसी हाजि़र जवाबी से तङ्ग थे, जिस के कारण इन की अक़्ल (वुद्धी) की शिकायत किया करते। इस कहानी में भी कई स्थानों पर मैंने उन की हाजि़र जवाबी के नमूने दिए हैं। परन्तु उनकी हाजि़र जवाबी को पढ़कर ऐसा आनन्द आता है और हमारे चरित्र नायक के इतने गुणों का पता लगता है कि

उन में से कुछ और का उल्लेख करना मनोरञ्जक ही न होगा प्रत्युत शिक्षा दायक भी सिद्ध होगा।

हरद्वार में सम्वत् १९४८ के कुम्भ पर स्वामी आत्मानन्द जी ने संयुक्त प्रान्त के छूत छात वाले उपदेशकों का चौका स्थिर रखने के लिए यह प्रबन्ध किया कि पंजाबियों से पहले वह चौके में भोजन कर लिया करें। पंडित लेखराम उन से भी पहले भोजन के लिए जा बैठे। तब पंजाबियों का अपवित्र किया हुआ चौका फिर से लगाया गया। दूसरे दिन भी पंडित लेखराम पाचक (रसोइए) के साथ वाली क्यारी में जा बैठे, परन्तु जब रोटी को बिना अधिक सेंके उस ने चूल्हे में से खींचा तो आप ने उस की पीठ पर हाथ ठोंका और उस के हाथ से चिमटा लेकर उसे रोटी सेंकना बताने लगे। अब तो संयुक्तप्रान्तीय दल में खलबली मच गई, परन्तु कुछ संयुक्त प्रान्ती उसी समय आर्य्य-पथिक के चेले बन गए और सखरी नखरी के भेद भाव को उड़ा दिया।

दिल्ली के जलसे पर एक आदमी केशर का चन्दन सब भाइयों के माथे पर लगाता आता था। जब आर्य्य-पथिक के समीप आया तो उन्हों ने डांट कर कहा—"मेरे सिर में दर्द नहीं है।" उत्तर मिला—"महाराज! सुगन्धि के लिए लगाते हैं।" आर्य्य-पथिक ने दाहिने हाथ का पृष्ठ भाग सामने कर के कहा—"तो यहां लगाओ" और जब वहां चन्दन लगाया गया तो नाक के पास लेजा कर सूंघने लगे; जिस पर सब उपस्थित् सज्जन मुसकिरा दिए

एक आर्य्य सज्जन ने भोजन के पश्चात् सब आर्य्य भाइयों को ताम्बूल (पान) बांटे। जब आर्य्य-पथिक के सामने पानदान पेश किया तो बोले—"देखते नहीं हो मैं मनुष्य हूं, बकरा नहीं हूं कि पत्ते खाऊं।" गुजरात आर्य्य समाज में आर्य्य-पथिक का व्याख्यान हो रहा था। मुसलमानों के "हराम, हलाल" के मसऽले पर बोल रहे थे। समाप्ति पर प्रश्नोत्तर का समय दिया गया। दो मौलवियों को तो योंही झिंझोड़ दिया, परन्तु अन्त में मौलवी बाक़रहुसैन उठे जिन की ऋषि दयानन्द के साथ भी पुनर्जन्म पर बात चीत हो चुकी थी। मौलवी साहेब ने कहा—"पण्डत साहब! आप ने जो हमारे हराम हलाल के मसले पर एतराज़ (आक्षेप) किए हैं; क्या आप ने यह भी सोचा है कि हमारे मज़हब में चुहिया हराम है। क्या वह भी इसी लिए हराम क़रार दी गई कि ज़बरदस्त थी?" आर्य्य-पथिक ने पूछा कि मौलवी साहेब सुन्नी हैं वा शिया। यह उत्तर पाने पर कि मौलवी साहेब शिया हैं पंडित लेखराम ने उत्तर दिया—"मौलवी साहब! मुझे आप का कथन सुन कर हंसी आती है। आप शिया हो कर चूहे की बुज़ुर्गी और ज़बरदस्ती से इनकार करते हैं। यही नामुराद चूहा था जिस ने मैदान कर्बला में सब पानी कीमशकें काट दीं, और बेचारे इमामहुसैन को प्यासा मरवाया। अगर ऐसे दो तीन और ज़बरदस्त पैदा हो जायं तो अरब और ईरान में कई कर्बला की सी घटनाएं होजायं।" श्रोतागण खिलखिला कर हंस पड़े और मौलवी साहेब चुप हो गए।

पण्डित लेखराम जैसे वक्ता श्रेष्ठ थे वैसे ही लेखक भी अद्वितीय थे।

लेखनी का प्रवाह ।

धर्म-वीर आर्य्य-पथिक ने अपने नाम को सार्थक करने के लिए विचित्र लेखनी चलाई। लेखराम सच मुच लेख की लहर चला देता था। सम्वत् १६४१ में लेखराम ने दासत्व से मुक्ति लाभ की। सम्वत् १६५३ के अन्त में उन का देहान्त हुआ। १२ वर्षो में उन्हों ने जहां लाखों नर नारी तक वैदिक धर्म का सन्देशा पहुंचाया, और सैकड़ों छोटे बड़े लेख लिख कर आर्य्य गज़ट फ़ीरोज़पुर, सद्धर्म्मप्रचारक तथा अन्य समाचार पत्रों में छपवाए, सैकड़ों शास्त्रार्थ किए और सहस्रों को धर्म से पतित होते २ बचाया, वहां ३३ छोटी बड़ी पुस्तकें तय्यार कीं जिन के छपे हुए, सत्यार्थ-प्रकाश के परिमाण के, पृष्ठ २६०० से कम न होंगे और इस के साथ ही ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र के लिए न केवल ८७६ बड़े पृष्ठों के लिए लेख तय्यार कर के ही छोड़ गए प्रत्युत पुस्तक की पूर्त्ति के लिए भी इतने नोटों का कोष जमा कर दिया कि उन सब से पूरा काम लेना भी कठिन हो गया।

एक विशेष कापी मिली है जिस काशीर्षक है—"आर्य्य-समाज की बीस साला रिपोर्ट।" इस के अन्दर १४ बड़े२ विषयों की सूची है जिस से ज्ञात होता है कि जो कार्य्य "आर्य्य डइरेक्टरी" का आज कुछ २ होने लगा है उस को आर्य्य-पथिक वर्षो पहले पूर्ण रीति से करने का विचार कर रहे थे।

भविष्य पुराण की पड़ताल मैंने उन्हीं की प्रेरणा पर आरम्भ की थी और विचार यह था कि हम दोनों १८ पुराणों तथा १८ ही उप पुराणों की पड़ताल का परिणाम जन साधारण के आगे रक्खेंगे। ऋषि जीवन का चरित्र छपवाने के पश्चात् उनका विचार अरबादी देशों में प्रचार के लिए जाने का था। इसके लिए उन्होंने आर्य्य-समाज के दस नियमों का भाष्य अरबी में लिख लिया था जो मेरे पास मौजूद है और १६ लघु पुस्तकों की सूची भी बना ली थी जिन्हें अरबी में छपवा कर वह साथ ले जाना चाहते थे। यह लेखनी का प्रवाह बड़ा ही प्रबल है। परन्तु कहा यह जाता है कि धर्म-वीर पण्डित लेखराम की "तहरीर सख्त" थी। यदि इस का मतलब यह है कि उनकी लेखनी ओजस्विनी और बलवती थी तो मुझे भी मानने में कोई सङ्कोच नहीं, क्योंकि जिस लेख का आधार सचाई पर हो और जो केवल अपने मन्तव्यों की रक्षार्थ लिखे गए हों उन का शक्ति शाली होना आवश्यक ही है। परन्तु यदि आक्षेपकों की यह प्रतिज्ञा है कि पं० लेखराम की लेख शैली महम्मदी तथा अन्य आर्य्य-समाज के आक्षेपकों की न्याईं अश्लील और असभ्य होती थी तो यह कहने में कोई सङ्कोच नही कि ऐसी प्रतिज्ञा निर्मूल और झूठी है। मेरी तो यहां तक प्रतिज्ञा है कि प० लेखराम अपने लेखों में कभी मर्यादा का भी उलंघन नहीं करते थे; तभी तो जब जब न्यायालयों में उन की पुस्तकें पेश हुईं तब तब ही

उनके विरोधियों को पराजित होना पड़ा। महम्मदी मौल-बियों को उन्हों ने युक्ति, प्रमाण तथा सत्यान्दोलन से ऐसा परास्त कर दिया था कि उन्होंने अमली तौर पर अपनी हार मान ली और जिस लेखनी को उन की सम्मिलित शक्ति जवाबी लेखों तथा न्यायालयों की सहायता से भी बन्द न करा सकी उसे कायर छुरी के द्वारा बन्द करा दिया।

महम्मदियों के आरम्भिक

आक्रमण

(१) सब से पहले १८८७ई०में अमृतसर में "तकज़ीब" और "नुसख़ा" के छपने पर मुसलमानों ने बड़ी हल चल मचाई परन्तु वकीलों ने नालिश की सम्मति न दी।

(२) सबसे पहला वास्तविक आक्रमण मिर्ज़ापुर के मुसलमानों ने किया। शुकुल्ला नामी व्यक्ति की ओर से "तकज़ीब बुराहीन अहमदिया" तथा "नुसख़ाख़ब्त अहमदिया" को मुसलमानों का दिल दुखाने वाली किताबे क़रार देकर मजिस्ट्रेट ज़िला के यहां अर्ज़ी दी। यह अभियोग बिना पं० लेखराम को बुलाए ख़ारिज़ होगया।

(३) प्रयाग में भी ऐसी नालिश हुई जो बिना अभियुक्त पुरुषों को बुलाए ख़ारिज़ हुई ।

(४) फिर लाहौर के मुसलमानों ने सं० १८९३ ई० के आरम्भ में "जिहाद" तथा अन्य पुस्तकों को लेकर, जो अरोड़वंश प्रेस में छपी थीं, और उन में अश्लील लेख बतला कर, नालिश की। इस मुकद्दमे में लाला लाजपतराय जी ने बड़ी पैरवी की और मुक़द्दमा ख़ारिज हुआ।

(५) फिर मेरठ के मौलवियों ने भी बड़े जलसे किए

और महम्मदी जगत को भड़काया, परन्तु वहां भी नालिश करने की सम्मति वकीलोंने न दी।

(६) दिल्ली में नालिश की गई। यह नालिश २८ अगस्त १८६६ को कप्तान डेविससाहब डिपुटी कमिश्नर देहली की अदालत में पेश हुई। डेविस साहब ने वे सब पुस्तकें मंगाकर सुनीं जिनके उत्तर में पं० लेखराम ने पुस्तकें लिखी थीं और बिना ग्रन्थ कर्ता तथा छापने वाले को बुलाए नालिश ख़ारिज कर दी।

तब मुसलमानों के बड़े पुर जोश जलसे हुए, बहुत सा धन एकत्र हुआ और कप्तान डेविस साहेब के हुकुम की निगरानी की गई। वह निगरानी फिर १० सितम्बर १८६६ को ख़ारिज हुई। इस अन्तिम फ़ैसले में साहब मजिस्ट्रेट ने लिखा—"यह मुक़द्दमा मज़हबी बुनियाद पर उठाया गया है। सारे शहर में जलसे किए गए और सब प्रान्तों से मुसलमान बुलाए गए हैं जिस से आज न्यायालय में जमा हो कर अपनी सहानुभूति प्रकट करें।......................................

"इस स्थान में यह बतलाना आवश्यक है कि पण्डित लेखराम आर्य्य अग्रणिओं में से एक हैं ....अब इस प्रश्न के विषय में कि क्या यह पुस्तक अश्लील है वा नहीं, मैंने वे सब विशेष २ वाक्य अवलोकन किए जिन्हें अश्लील बतलाया जाता है। यह बात विचारणीय है कि इन में बहुत

अधिक तो ऐसे वाक्य हैं जो कि अश्लील कहे ही नहीं जा सक्ते । दूसरों में प्रश्न यह है कि शब्दों का किस प्रकार से प्रयोग हुआ है ....मेरी सम्मति में पुस्तक के शब्द इन (अश्लील वा असभ्य) अर्थों में नहीं लिए जा सक्ते........मैं निश्चय करता हूं कि कोई भी जुर्म (अपराध) लेखराम ....के विरुद्ध प्रकट नहीं किया गया और इस लिए अभियोग को "ज़ाबिता फ़ौजदारी" की धारा २०३ के अनुसार ख़ारिज करता हूं"

(७) दिल्ली से निराश हो कर मुसलमानों ने मुम्बई में बड़ी हल चल मचाई और दिसम्बर, १८९६ में वहां नया अभियोग चलाया । जब वह अभियोग भी बिना पण्डित लेखरामको बुलाए ख़ारिज हो गया तब—

(८) पेशावर में धर्म वीर लेखराम रूपी ज्वलन्त शक्ति को, जो इन अदूर दर्शी दृष्टियों में इसलाम की जड़ों को खोखला कर रही थी, सदा के लिए शान्त कर ने का यत्न सोचा गया । पेशावर में दिल्ली का मुक़दमा ख़ारिज होते ही आग भड़की थी यद्यपि पहले नालिश का ही विचार था । परन्तु जब मुम्बई के अभियोग की भी समाप्ति का समाचार आया तो फिर पेशावर, मुम्बई, अमृतसर, पटना इत्यादि सब नगरों से यह समाचार आने लगे कि मुसलमान पण्डित लेखराम को मरवा देने के मन्सूबे बांध रहे हैं ।

आर्य्य भाइयों ने विविध स्थानों से सचेत करने के लिए

लाहौर आर्य्य-समाज को पत्र भेजे परन्तु, लेखराम की रक्षा कौन कर सक्ता था। धर्म बीर ने डर का शब्द ही अपने कोष से निकाल छोड़ा था, वे मनुष्यों की धमकियों की क्या परवा करते थे।

अन्तिम जवनिका;

धर्म पर बलिदान ।

.फ़ेब्रवरी, १८९७ के मध्य भाग में एक काला, गंठे हुए ब-दन का भयानक, नाटा युवक दयानन्द कालिज में पण्डित लेखराम को पूछता गया; वहां से पता लेकर वह पण्डित ले-खराम के निवास स्थान पर पहुंचा और पंडित जी से निवे-दन किया कि वह असल में हिन्दू था, दो वर्षों से मुसलमान हो गया है और अब शुद्धी के लिए आर्य्य-पथिक की शरण में आगया है। पण्डित लेखराम ने प्रतिज्ञा की कि वह उस पतित को शुद्ध कर लेंगे।

पण्डित लेखराम को कई स्थानों के आर्य्य-भाइ सचेत कर चुके थे कि महम्मदी लोग उन के मरवा डालने की फ़िक्र में लगे हुए हैं, परन्तु ऐसी चेतावनियों का पण्डित लेखराम पर उलटा असर हुआ करता था; उन्हों ने इस अनजाने व्यक्ति के विषय में पता भी न लगाया कि वह कौन और कहां से आया है, और न उसी से कुछ पूछा। कुछ आर्य्य भाइयों ने पता लगाना चाहा जिन से उस ने अपने आप को बङ्गाली बतलाया, परन्तु प्रत्येक ८ शब्दों में से केवल दो ब-ङ्गाली शब्द समझ सक्ता था। जिस ने उस की शकल देखी बिना सोचे कह दिया कि वह बूचड़ है। अनुमान होता था कि वह पटना प्रान्त का रहने वाला है।

यह पटनवी बूचड़ छायावत् पंडित लेखराम के साथ फिरता रहा। दो तीन वार पं० जी के घर में रोटी खाता भी देखा गया। दिन को वह पं० जी के साथ रहता था, परन्तु यह किसी को पता न था कि रात कहां काटता है। धर्म-वीर के बलिदान के पश्चात् पुलिस के आन्दोलन के समय पता लगा था कि वह रात को उस स्थान में सोता था जहां कि लेखराम के बध के मन्सूबे गांठे जाते थे।

१ मार्च को पं० लेखराम सभा की आज्ञानुसार मुलतान पहुंचे जहां ४ मार्च तक ४ व्याख्यान दिए। सभा ने सक्खर जाने के लिए तार भेजा परन्तु प्लेग के कारण मुलतान समाज के सभासदों को वहां जाने से रोक लिया; उन को क्या मालूम था कि वे सन्दिग्ध कष्ट से बचा कर अपने वीर धर्मोपदेशक को सीधा मौत के मुंद में भेज रहे हैं। फिर पण्डित लेखराम मुज़फ्फरगढ़ के लिए तय्यार हुए, परन्तु न जाने क्यों फिर सीधे लाहौर को लौट पड़े जहां वह ६ मार्च की दोपहर को पहुंच गए।

५ मार्च को ईद का दिन था। इस से बढ़कर, महम्मदी मत की जड़ खोखली करने वाले को, वध करने का श्रेष्ठ दिन कब मिल सक्ता था। उस दिन बूचड़ घातक ने आर्य्य-पथिक के निवास-स्थान, आर्य्य-प्रतिनिधि सभा के कार्यालय तथा रेलवे स्टेशन पर १८ वा १६ चक्कर काटे। ६ मार्च के प्रातः फिर पण्डित जी के घर पहुंचा, वह अभी

लौटे न थे; फिर सभा के कार्यालय में गया परन्तु वहां से भी निराश लौटा।

२ बजे पंडित लेखराम के साथ सभा के कार्यालय में फिर पहुंचा। गली की ओर मुंह करके खिड़की में बैठ गया। उस दिन थूकता बहुत था। सभा के मुनीम ने कहा-"पंडित जी! यह स्थान ख़राब करता है।" भोले आर्य्य-पथिक बोले—"भाई! बैठा रहने दो; तुम्हारा क्या लेता है।"

उस दिन नियम विरुद्ध सारा शरीर कम्बल से ढके हुए था। सभा से चलते समय कांपा। पंडित जी ने पूछा कि ज्वर तो नहीं है। धीरे से बोला—"हां और कुछ दर्द भी है।" पंडित लेखराम उसको इलाज के लिए डाक्टर बिष्णुदास के पास ले गए। नाड़ी देखकर डाक्टर ने कहा—"बुख़ार बुख़ार तो मालूम नहीं होता, इसका खून जोश में है और थकान मालूम होती है, यदि दर्द है तो ब्लिस्टर लगा दिया जावे।" घातक ने कहा कि लगाने की नहीं, कोई पीने की दवाई दीजिए। यदि उस समय कम्बल उतार, उसके दवाई लगवाने का विचार होता तो कमर में लगी छुरी पकड़ी जाती। परन्तु आर्य्य-पथिक तो स्वयम् बलिदान की तय्यारी कर रहे थे, सिफ़ारिश की कि पीने की दवाई ही दी जावे। डाक्टर ने कहा कोई शरबत पी लेवे। न जाने कहां से शरबत पिलवा कर बज़ाज़ की दूकान पर गए और इसी घातक के हाथ एक थान माता जी को दिखाने भेजा। बज़ाज़ ने घातक के चले

जाने पर कहा—"पं०जी ! क्या भयानक आदमी साथ लिए फिरते हो।" धर्म वीर, शुद्धि की धुन में मस्त, उत्तर देते हैं—"भाई ! ऐसा मत कहो; यह धर्मात्मा आदमी है, शुद्ध होने आया है।" घर जाकर पंडित जी जिस खुले बरामदे में काम करते थे वहां चारपाई पर बैठकर जीवन चरित्र सम्बन्धी काम करने लग गए। उनकी बाईं ओर कुर्सी पर घातक बैठ गया। ६ बजे लाला जीवनदास और लाला केदारनाथ जी आए और अगले रविवार के लिए व्याख्यान की प्रतिज्ञा करा के चले गए। घातक बैठा रहा। माता जी रसोई में थीं, धर्म-पत्नी जी दूसरे कमरे में अलग पढ़ रही थीं। तब पंडित लेखराम ने घातक को कहाः—"अब देर हो गई है, भाई ! तुम भी आराम करो।" घातक न हिला। दस मिनटों के पीछे माता जी ने चौके से कहा—"पुत्र लेखराम, तेल नहीं आया।" पण्डित लेखराम उस समय ऋषि दयानन्द की मृत्यु का अन्तिम दृश्य खींच रहे थे; पत्रे वहीं रख दिए और चारपाई पर से उस ओर उतर कर जिधर घातक बैठा था, अपने अभ्यासानुसार आंखें बन्द कर और दोनों बाहें ऊपर उठा के ज़ोर से अङ्गड़ाई लेते हुए कहा—"ओफ़्फ़ोह ! भूल गया।"

इस समय आर्य्य-पथिक ऐसे सीना तान के खड़े हुए कि जिस समय की घात में दुष्ट घातक प्रतीक्षा कर रहा था, वह आन पहुंचा। एक दम से अभ्यस्थ हाथ ने छुरी पेट के अन्दर घुसेड़ कर इस प्रकार घुमा दी कि आठ, दस घाव अन्दर

आए और आंतड़ियां बाहर निकल पड़ीं।

परन्तु क्या आर्य्य-पथिक इस निष्ठुर, पिशाचत्व के आक्रमण से विवश होकर गिर पड़े और अपनी चिल्लाहट से महल्ले को जगा दिया? वहां न कोई हृदय बेधक आर्तनाद ही सुनाई दिया और न कोई चिल्लाहट की आवाज़ माता और धर्म-पत्नी ने सुनी। यदि धर्म वीर में यह निर्बलता होती तो लोग दौड़ पड़ते और घातक उसी समय पकड़ा जाता। परन्तु वहां पतितों पर दया का भाव अभीतक स्थिर था जिस ने घातक को स्पष्ट बचा दिया।

अन्तड़ियों का बाहर निकलना था कि बांए हाथ से बाहर निकली हुई अन्तड़ियों को संभाल दाहने हाथ को घातक के हाथ पर डाल दिया। साधारण पुरुष अपने रक्त के दर्शन मात्र से होश गंवा बैठता है, परन्तु वीर लेखराम सिंह पुरुष था। सिंह के अन्दर चाहे रक्त की नदी बह जाय परन्तु उस की सावधानता में भेद नहीं आता। पहली झपट में लड़ते भिड़ते सिढ़ी के पास जा पहुंचे और घातक के हाथ से छुरी छीन ली। घातक के दो हाथ और धर्म-वीर का केवल एक, और फिर रक्त की धारा बह रही; संभव था कि घातक फिर छुरी छीन ले कि लक्ष्मी देवी ने, झूठी लोक लज्जा को परे फेंक कर, हाथ जा मारा और छुरी धर्म-वीर के हाथ में रह गई। लक्ष्मी देवी ने इस डर से कि कहीं घातक फिर आक्रमण न करे धर्म-वीर को रसोई की ओर खींचा। परन्तु घातक के दुष्ट हृदय को इस पर भी सन्तोष

न हुआ और वह खूनी आंखों से डराता हुआ फिर पीछे दौड़ने लगा, कि माता जी ने दोनों हाथों से उसे पकड़ लिया। इस समय घातक भी हांपने लग गया था और उसने पास पड़ा एक बेलना झपट कर उठा माता जी के दो तीन चोटें लगाईं। वह अचेत होकर भूमी पर गिर पड़ीं और घातक सिढ़ियों से उतर कर न जाने कहां लुप्त हो गया।

कुछ पलों के पश्चात् लाला जीवनदास जी बाहर से लोटे तो बड़ा हृदय विदारक दृश्य देखा। चारपाई पर धर्म-वीर सीधे लेटे हुए हैं; अन्तड़ियां एक हाथ से दबाए हुए हैं और रक्त का श्रोत बह रहा है। वृद्ध जीवनदास जी घबरा गए। फिर और लोग आगए। परन्तु आर्य्य सिंह के मुख पर कोई मलीनता न थी; पूछने पर उसी सरल परन्तु वीरता-पूर्ण-वाणी से उत्तर दिया—"वही दुष्ट, जो शुद्ध होने आया था, मार गया।" फिर बोले—"डाक्टर को बुलाओ, शीघ्र बुलाओ।" चारों ओर समाचार फैल गया, डाक्टर तथा डाक्टरी के विद्यार्थी जमा हो गए। चारपाई पर धर्म-वीर को लिटा कर हस्पताल की ओर ले चले। मैं उस दिन अकस्मात ४ बजे शाम की गाड़ी में लाहौर पहुंचा था, समाचार पाते ही धर्म-वीर के निवास-स्थान की ओर चल दिया। आगे गली के मुहाने पर "शहीद की सवारी" आती हुई मिली और मैं क्लेजा थाम के साथ हो लिया।

हस्पताल पहुंचते ही आर्य्य वीर को मेज़ पर लिटाया गया। दुखित मन को संभाल कर मैं आगे बढ़ा। उस समय

अन्तड़ियां हाउससर्जन के हाथ में थीं। मुझे देखते ही दोनों हाथ, जो सिर के नीचे थे, उठा लिए और हाथ जोड़े। मेरी अश्रुधारा निकलने को ही थी कि प्यारे लेखराम ने अपनी साधारण बीर-वाणी से कहा—"नमस्ते लाला जी, आप भी आगए।" इस साधारण दृश्य ने मेरा दिल दहला दिया। अन्तड़ियों की ओर देखकर विश्वास नहीं आता था कि मैं अपने प्यारे मित्र लेखराम से बात कर रहा हूं। ऐसा प्रतीत होता था कि मानों शिमले के वार्षिकोत्सव से लौट कर मुझे नमस्ते कर रहे हैं फिर बोले—"लाला जी बेअदबियां माफ़ करना" मैंने बल पूर्वक रोने धोने को रोक कर कहा—"पण्डित जी! आप तो परमात्मा पर पक्का विश्वास रखने वाले हैं, प्रत्येक शङ्कट में उसी का आश्रय ढूंढा करते है; उस का ध्यान कीजिए।" वह बीर-वाणी उत्तर देती है—"अच्छा तो शायद मैं अच्छा हो जाऊंगा, परन्तु लाला जी! मेरे अपराध क्षमा करना।" यह कहा और वेदमन्त्र का पाठ करने लगे।

"ओ३म्। विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रंन्तन्नआसुव।"

मरते दम तक इस मन्त्र तथा गायत्री मन्त्र का जप करते रहे। बीच बीच में "परमेश्वर तुम महान हो, परमपिता इत्यादि" शब्द बोलते रहे।

छुरी लगने से पूरे पौने दो घन्टों के पश्चात् डाक्टर पेरी

साहेब आए। फिर बराबर दो घन्टों तक डाक्टर महोदय कटी हुई आंतों को सीते रहे। एक स्थान की आंत कट कर दो टुकड़े हो गई थी, आठ बड़े घाव और बहुत से छोटे घाव भी थे। डाक्टर पेरी हैरान थे कि दो घन्टों तक जिस के अन्दर से रक्त खुला बहता रहा हो वह कैसे जीवित रह सक्ता है, इस लिए उन्होंने कहा कि साधारण अवस्था में तो ऐसे घाव लगने पर कोई मनुष्य बच नहीं सक्ता, परन्तु जिस की अब तक यह चेतना शक्ति है वह शायद बच जावे। यदि यह बच गया तो Miracle (चमत्कार) ही समझना चाहिए।

१½ बजे रात तक बराबर सचेत थे। केवल परमेश्वर के नाम का जप था; न घर वालों की चिन्ता और न घातक पर अप्रसन्नता और न मौत का डर। यदि चिन्ता थी तो आर्य समाज की, और यदि ध्यान था तो उस महा-यज्ञ की ओर जो ऋषि दयानन्द रच गए थे। धर्मवीर ने न तो माता और धर्म पत्नी की चिन्ता की क्योंकि उन को विश्वास था कि परमेश्वर उन का सहायक है और नहीं घातक का पता लगाने को कहा क्योंकि जिस वैदिक धर्म के वह सच्चे सेवक थे वह बदला लेने की शिक्षा नहीं देता। अन्तिम आदेश अपने सहधर्मियों को यह दिया कि—

"आर्य समाज से लेख का काम बन्द नहीं होना चाहिए"

दो बजे के समीप धर्म वीर का तौर बदल गया। दो बार

ज़ोर से हाथ हिलाए और ५ मिनटों में हाथ सीधे कर के सदा की नींद सो गए।

पौ फटते ही धर्मवीर की मौत का समाचार विद्युतवत् सारे लाहौर नगर में फैल गया। क्या हिन्दू, क्या जैनी, क्या ब्राह्मो, क्या सिक्ख सब दुःखी प्रतीत होते थे। अपने प्यारे से प्यारे बच्चे की मौत पर इतना कष्ट न हुआ होगा जो इस समय आर्य सन्तान मात्र को लेखराम के वध का समाचार सुन कर हुआ। सब ने छोटे छोटे विरोधों को भुला दिया। दस बजे के अनुमान धर्मवीर के मृतक शरीर वाले कमरे के सामने का मैदान आर्य सन्तान से भर गया। वे लोग, जिन्होंने आर्य मन्दिर में कभी पैर भी नहीं रक्खा था, इस जन समूह में दिखाई देने लगे। सिवल-सर्जन ने बड़ी सहानुभूति की दृष्टि से किसी मुसलमान को मृतक शरीर के पास फड़कने न दिया और दस मिनिट में दो घन्टों का काम करके लेखराम का जो कुछ बचा था हम लोगों के हवाले कर के चल दिए।

अन्दर जाकर देखा तो आर्य-पथिक को सदा का यात्री पाया, परन्तु फिर भी स्थिर बिछोड़े का निश्चय न हुआ। आंखें मुंदी हुईं परन्तु मुख में कोई परिवर्तन नहीं; मानो लेटे हुए सन्ध्या कर रहे हैं। वही हृष्ट पुष्ट शरीर, वही विशाल छाती; कुछ भी भेद न था। अश्रुधारा बहाते हुए सब भाइयों ने प्रेम पूर्वक वस्त्र पहिनाए। बाहर अर्थी लाते ही सारा शरीर श्वेत पुष्पावली से ढांपा गया। कैमरा (Camera) तय्यार था,

मुंह खोल कर अन्तिम चित्र लिया गया। इस समय दो सहस्र पुरुष अन्तिम दर्शन के लिए खड़े थे।

अर्थी उठाई गई और शहीद की सवारी सीधी अनारकली में पहुंची। थोड़ी ही देर में २० सहस्र का तांता साथ था। यहां माता भी आ पहुंची जिस का विलाप सुन कर २० सहस्र आंखों से नदिएं बहने लगीं। एक युवक अचेत हो कर गिर पड़ा।

अर्थी ने शहर में प्रवेश किया। प्रत्येक स्थान में आर्य-जाति की देवियों के नीचे छतें फटी पड़ती थीं। प्रत्येक देवी को ऐसा दुःख था जैसा उन का कोई प्यारा बच्चा सदा के लिए जुदा हो गया हो। वे लोग जो कभी अपनी दुकान से हिल कर किसी सभा सुसाइटी में नहीं गए, गुलाब जल के कन्टर अर्थी पर बहा रहे थे। किसी किसी स्थान पर तीस २ हज़ार की भीड़ हो जाती थी। फूल बेचने वालों ने मुंह मांगे दाम लिए, भूमी पुष्प वर्षा से रंगी पड़ी थी। अन्त को सवारी नगर से बाहर निकली और वेद मन्त्रों का उच्चारण करते तथा वैराग के भजन गाते सात सहस्र से अधिक भाई श्मसान भूमी तक पहुंचे। ज्ञात होता था कि चिरकाल से सोई हुई आर्य जाति जाग उठी है और धर्म पर सर्वस्व न्यौछावर करने वालों का सत्कार करना सीखने लगी है।

श्मसान में अर्थी को रक्खा गया और फिर अन्तिम दर्शन की अभिलाषी हुई। पढ़े लिखे और अनपढ़, राव ओर रङ्क, सबने दर्शन किए। एक भक्ति-रस से भरा भजन गाया गया और उपस्थित सज्जनों की शान्ति के लिए ईश्वर प्रार्थना हुई। मृतक शरीर का वेद मंत्रों की आहुतियों से दाह किया गया और जब वह बहु मूल्य शरीर केवल एक भस्म की ढेरी रह गया तो सब भाई घरों को लौटे।

उस समय आर्य्य-धर्म रूपी देवी का आर्तनाद स्पष्ट सुनाई देता था—

"हा! वीर लेखराम, पुत्र! क्या तुम सदा के लिए मेरी सेवा से जुदे होते हो?"

इस प्रश्न का उत्तर मेरे अन्दर से निकला। मैंने श्रद्धा पूर्वक मन ही मन में उत्तर दिया—"देवी! धर्म-वीर के रक्त की एक एक बिंदु से एक एक वीर उत्पन्न होगा और वे सब तुम्हारी सेवा करेंगे।" और सचमुच उन रक्त बिंदुओं ने वीर प्रचारक उत्पन्न किए और सोमनाथ, वज़ीर चन्द्र, मथुरादास, तुलसीराम, सन्तराम, योगेन्द्रपाल, जगतसिंहादि ने ओ३म् का झण्डा उठाए हुए प्राण दिए और अन्य भी बीसियों वीर काम कर रहे हैं; परन्तु आज पौने अठारह वर्षों के पश्चात् भी देवी का वही आर्त-विलाप सुनाई देता है—

"हा, पुत्र लेखराम ! वीर ! क्या सदा की यात्रा में ही चले गए ? फिर दर्शन न दोगे ?"

क्या देवी की पवित्र पुकार बहरे कानों पर ही पड़ती रहेगी और ब्राह्मण धर्म का पालन एक स्वप्न ही बना रहेगा !

समाप्त ।